बागड़ी बोली का स्वरूप और उसका तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. एल. डी. जोशी एम. ए., पी-एच. डी.
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
एस. के. शाह एवं श्री० एम० आर्ट्स कॉलिज
मोडासा (गुजरात)

पंचशील प्रकाशन, जयपुर

प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन
फिल्म कॉलोनी, जयपुर-302003

मूल्य : पच्चीस रुपया

संस्करण : प्रथम, 1947

मुद्रक : शीतल प्रिन्टर्स
फिल्म कॉलोनी, जयपुर-302003

Bagri Boli Ka Sawroop Aur Uska Tulanatamak Adhyan

(Thesis)

By : **Dr. L. D. Joshi**

(३) "कागलो ने से॑याल्"

एक कागलो अतो ने एक से॑याल अति। कागलो भाइ कॅंक थकि (कॅं कि) पुड़ि लाव्या ने एक ले॑वड़ा ऊपर बॅंटा। अेटला में एक से॑याल् आवि। कागला भाइ ने मो॑डा में पुड़ि जु॑इ ने से॑याल् बाइ ने मुंडा में पाणि आव्यु। पण पुड़ि पड़ाववि से॑रते। खउब वस्यार करि ने से॑याल् बाइ बुोल्य॑ "कागला भाइ, कागला भाइ तमॅंने तो असल असल गित गाता आवड़॑।" से॑याल् बाइ ने मुोडॅय॑ वके॑ण स॑वलि ने कागलो भाइ तो खरेखर गावा लाग्या। कां..........कां..........करतॅं में तो कागला ने मुंडा मे॑इ पुड़ि पड़ि गइ। पड़तॅं में पुड़ि लइ ने से॑याल् बाइ खाइ ग्य॑ ने कागलो भाइ रुोता रइ ग्या।

(४) "ओ॑ट भाइ ने से॑याल् बाइ"

एक से॑याल् अति। खावानि खउब सट्टुकड़ि अति। नदि ने सामॅं ढाले॑ एक खेतर में लिलि मकि अति, पण नदि में पाणि अतु अेटले स॑याल् वति ज़वातु नतु। सामि आडे से॑रते ज़ावु अेम वस्यार करतिति अेटला में तो एक ओ॑ट भाइ आव्या। ओ॑ट-भाइ ने देकि ने से॑याल् बाइ बोल्य॑ "ओ॑ट भाइ; ओ॑ट भाइ। अटला दुवला केम देको...." अेटले ओ॑ट भाइ वुोल्या, "सु॑ करु॑ बाइ, मने पेट भरि ने खावा नति मलतु।' से॑याले॑ क्यु के "मारे साते सामॅं ढाल॑ आवो तो लिलि मकि खावा मलॅं।" मकि नु नाम लेतॅं मे॑ ओ॑ट भाइ नें तो मुो॑डा में पाणि आविग्यु ने बुोल्या "से॑डो बाइ तारे आज॑ भुक भागि आवॅं।" अेम करि ने रातरे बॅं जु॑णॅं सामि आडे खावा ग्य॑। नदि में ओ॑ट भाइये॑ स॑याल् बाइ ने मोरॅं माते वेवाड़ि लिदॅं। खेतर में जाइ ने बॅं-स्यार पोकड़॑ खातॅं में से॑याल् बाइ नु तो पेट भराइ ग्यु ने बुोल्य॑ कॅं ओ॑ट भाइ, ओ॑ट भाइ। मारु तो पेट भराइ ग्यु ने अवे ओन्या वना ने रॅंवाय। ओ॑ट भाइ कॅंय॑ कॅं "मारे तो अजि सलालुोए नति थ्यो" ने अेम कइ ने कुोल॑ कुोल॑ पोकड़॑ खावा लागा। से॑याल् बाइ वति तो नें रॅंवॅंणु नें इतो ओ॑नि पड़य॑। से॑याल् नो साद सॅवलि ने रकवालि जागि उट्यो ने डॅंडो लइ नो दोड़्यो। से॑याल् बाइ तो सॅंपाइ ग्य॑ पण ओ॑ट भाइ लॅंगड़ा-ता लॅंगड़ाता नदि ने कांटे आव्या ने पाणि में पा॑ग मेल्यो अेटला में से॑याल् बाइ बुोल्य॑—"ओ...ओ॑ट भाइ, सात करि ने आव्या ने अवे सात सुोड़ि ने जो...."अेटले ओ॑ट भाइ बुोल्या ओवॅंरॅं ओवॅं बाइ साते लावि ने आटकॅं भगाव्य॑ ने। अेटले से॑याल् बाइ सोगन खावा लागॅं के अवे कारेयॅं आवु नें

करुँ पण मने सामि आडे लै जो। ओंट भाइयेँ वस्यार कर्यो कँ ठिक लाग आव्योए नदि में अदवँसे ओँडँ लइ जाइ ने बुडाड़ि दँउ। अेम करि ने सँयाल् वाइ ने मोरँ मातँ वँवाड़ि लिदँ। अरदि नदिये ओँडा पाणि में जाइ ने ओँट भाइ तो केवा लाग्या अेटले सँयाल् वाइ विनँ ने बोल्यूँ कँ ओँट भाइ, आ सुँ करा"....अेटले ओँट भाइ बोल्या के खउव खादँ पुटे मने तो पेटे पाणि अडे अेटले आलेटवु पड़े। ने अेम कइ ने ओँट भाइ पाणि मे आलेटि पड्या ने सँयाल् वाइ बुड़ि मयूँ।

(५) "मँगोरनु काल्जु"

एक नदि ने काँटा उपर जाँबुआनु जाड़ अतु। अेणा जाम्बुआ उपर एक वाँदरो रँतोतो। जाँबुअँ नि रत आवि ने जांबुअँ पाकवा मांड्यूँ। वाँदरो भाइ जांबुअँ खाता ने नदिनु पाणि पिता ने मजा करता। अेणा जाँबुआ तलूँ पाणि में एक मँगोर रँतोतो। थोड़ँ दाड़ँ में वाँदरा भाइ ने ने मँगोर भाइ ने भाइयासालि मन्दँणि। वाँदरो भाइ मेटँ मेटँ जाबुअँ नाकता ने मँगोर भाइ खाता ने पसे मँगोर भाइ वाँदरा भाइ ने मोरँ मातँ वँवाड़ि ने पाणि में फरवा लइ जाता। एक दाड़ो वाँदरे भाइये मुटँ ने मेंटँ मेटँ जांबुअँ मँगोर भाइ ने अेणेँ ने ववो मँगोरि वाइ सारु आल्यँ। जाबुअँ खाइ ने मँगोरि वाइ ने तो सवाद पड्यो। केवा लागि "जाँबुअँ अटलँ मेटँ लागें तारे दाड़ि जावुअँ खाइ ने जिवँ अेणा वाँदरानु काल्जु केवु मेटु ओवँ। मने तो अेणा वाँदरानु काल्जु आणि आलो तोस तमँने मुडँ बोलुँ।" थाकि ने मँगोर भाइ वांदरानु काल्जु लेवा वाण्णे आव्या ने वाँदरा ने साद्यु कँ वाँदरा भाइ सँडो पाणि में फरवा जूँ। वाँदरा भाइनुए मन थ्यु ते जाइ ने मँगोर भाइ ने मोरँ मातँ जाइ ने वँइ ग्या। तरतँ तरतँ थोड़ि वार थइ ने पसँ मँगोर भाइ तो पाणि में उतरवा लागा अेटले वाँदरो भाइ विना ने वोल्या कँ कलँ मँगोर भाइ आ सुँ करो? मंगोरे सासि सासि वात कै दिदि काळ जानि वात संवळि वांदरा भाइनु कालजु खरेखर खाँवा मांड्यु पण अेमत करि ने क्यु के भाइ मने पँलँ कँवुतु कँ, काल्जु तो ओं घेरँस मेलि आव्यो....। सँडो पासा, लइ आवें।" अेटले मँगोर भाइ पासा जाँबुआ तले आव्या। जांबुआ कने आवतँ में तो वाँदरो भाइ ठेँकि ने रोकड़ा उपर सड़ि ग्यो ने वोल्यो "मुरक, कालजु कोंणेँ जुवु राकतु ओवे?"

(६) "एक दाड़ानि वात"

अमारँ खेतरँ में मकि पेरिति। मकि उगि ने कुसियूँ-मांजूँरे आवि।। जनोरँ खाइ जातँ अेटले रकवाणु राकवु पड़तु। रकवालूँ वँवा सारु, खेतरँ ने वँसुवँस, एक

स॒ैंडा उपर, डागलो गाल्यो । अेरे मैंरे मकि कँ ने अति अेटले उड़ा खउब आवता । उड़ँ ने समकाववा सा॒रु डागला उपर ओड़ियो कर्यो । एक ढिबरा में जा॒गतो राक्यो ने गोपेँण ने पाणा भेगा करि मेल्या । आको दाडो एक फुट्टु डाबडु वगाड़वु पड़तु ने "स॒ुड़ा स॒ुड़ा" करि ने डाडँ पाड़वि पड़ति । दाड़ो तो जेँम तेम करि ने नेरि जा॒तो पण रातर काडवि कटंण पड़ति । रातरे सेँया॒ल ने सेँड़िय॒ तरा पाड़ति । अजी पोकड़ँ दुदियँ अतँ, तोय लणि लेवानु तँ कर्यु ने बिजँ दाडँ स॒वार में वँलँ उटि ने आकाए घोर नँ मनक खेतरँ में मकि लणवा ग्य॒ँ । सब जु॒ँण लवणा आव्यँ अेटले खावानि तो खँर सल्ला । जेम-जेम दाड़ो सड़तो ग्यो, अेम अेम, भुक लागवा मांडि । खावा सा॒रु बिजु.तों स॒ुँ मलँ, पण पोकड़ँ तो अतँस । दुदिय॒ँ टालि ने भेगँ कर्य॒ । ने एक जु॒ंण डागला मातँ पुँकड़ँ सेँकवा ग्यु । सेँकाइ र्य॒ँ ने सँगलँ ने पोकड़ँ खावा सा॒दयु अेटले काम पड़तु मेलि ने सब जुणँ दोड़ि ने डागलँ सड़य॒ँ । अोनँ अोनँ पोकड़ँ नो स॒वाद आवि र्यो॒तो, अेटला में तो अोँसँयु एक ओँदरानु वसियु पड़यु अेटले सब जोणँ समकि ग्यँ ने एक आडे ओरि ग्यँ अेटले डागलो तो भरड़ दइ ने भागि पड़यो ने सँगलँ नँ आट्कँ जु॒ज़रँ थइ ग्य॒ँ । आजे-ए इ बात या॒द आवँ तो खकड़ि खकड़ि ने दाँत आवि जँए ।

(७) "करम करँ जु॒ोर अेना कुोदरा लणँ सुोर"

एक फेरो रातरे सुोर सुोरि करवा नेर्या । एक खेतर में असल असल कुोदरा पाकि र्या॒ता । पण खेतर नो धणि एक आल॒सि आदमि अतो ने आजँ लणुँ कालँ लणुँ अेम करि ने दाड़ि दाड़ा ठेलतो तो । खेतरँ रातरे सु॒वा पण नें जा॒तो । अेनि वउ खउब कँति पण एकनो बँ ने थ्यो ने पाका दाणा राम भरुोसँ मेलि ने घोर में स॒ुइ रँतो । एक दाड़ो धणि ने वउ बँए विसार कर्यो कँ वँलँ उटि ने कुोदरा लणवा जँ । रातरे स॒ुतँ ने स॒वार में वँलँ उटि ने लणवा ग्य॒ँ । खेतरे जा॒इ ने जु॒ोवँ तो खेतर आकु लणाइ ग्युतु ने एक खुोणोँ लणवो वाकि अतो । खेतर लणातु जु॒ोइ ने धणि ने वउ बँए जु॒ोर जु॒ोर नी डाडँ ने वारँ पाड़ि । सुोरँए जाण्यु कँ अवे स॒ज़ाइ ज़वाए ने लेवँया देवँ पड़वु पड़ँ । अेटले लण्यु थकु रँवा दइ ने दइपाटि ने नाटा । सुोर साल्या ग्या ने वँ धणि ने वउ बँ लण्या थका कुोदरा गाडु भरि ने घेरे लइ ग्य॒ँ । आम सुोरँ ने करम में ने अतु नें लण्यु थकुए नें लेवँणु । दाणा दाणा उपर खावा वाला॒नु नाम खुोतर्यु थकु रँ अेटले जे ने नसिब में अुोवँ अेनँस खावा मलँ । खेतरनो

घिण भगवन भरोसे घेरँ सूइ रँतो तोय् अेनँ करमनु अतु अेटले लण्यु थकु त्यार मल्यु तार थकि कँवत पड़ि कँ—"करम करँ जोर अेना कुदरा लणेँ सूर।"

(८) "आप कर्मि कँ बाप कर्मि"

एक राजा ने बँ कुँवोर अता। लोड़ो बतरि लकणो ने खउब रुपालो अतो। बँ भाइ सातेआ रमता ने सातेया जमता। दाड़ा पुटे दाड़ो जातो ग्यो ने बँ भाइ मुोटा थइ ग्या। वडा ने राजाए राज-पाट सब आल्यु ने लोड़ा ने कोय् नें आल्यु। पण कँवत कइ ए कँ "पुरस नु करम पाना ओलवँ" ते लोड़ो कुँवोर तगदिर नो तिको अतो। एक दाड़ो बँ भाइ सेंकारे ग्या ने वाट भुलि ग्या ने जुवा पडिग्या। मुोटो कुँवोर तो घेरँ आव्यो पण लोड़ानु कँ पत्तु नें लागु। लोड़ो कुँवोर फरतो फरतो एक सँर कने आवि पुगो। पण सांज पड़ि गइति ने दाड़ो आतमि ग्योतो। रातर पड़वा नि तँयारि अति अेटले पँरा वाले पुोलना दरवाजा मगल करि दिदा। पेलो कुँवोर जोर जोर नि डाडँ पाड़ँ ने सादँ पण कोंण सँबलँ। कमाड़ नें उगड़यँ अेटले थाकेला नो मार्यो बाण्णँ ओटला उपर सूइ ग्यो। थाको-भराको अतो अेटले अेने तो नेंदर आवि गइ। अेणा सँर में एक राजा अतो। अेने एक ने एकस दिकरि अति। राजानि आ दिकरि गणिस रुपालि ने लाडवँइ अति। भर जोवन में आवि गइ ति पण तोय् माँ वापे लाड ने लिदँ पण्णावि नें अति। गणँ वहालँ सलव्यँ पण वाइ ने सुोबितो वोर नें मल्यो। थाकि ने राजाए माता नि आरादना करि ने नोंगा-जुगि आजँ अेवु बण्यु के माताए राजाने सपनु दिदु के पुोनेम नि परवाते पुोल उगाड़तँ में पँल जँ मलँ अेने कन्या पण्णावि देजँ। आजँ पुोनेम नी परवात अति एटले पुोलनो दरवाजो उगाड़तँ में जँ मले अेने वाइ ने पण्णाववानि वात अति पण आ वात राजाए सानि राकि ने राजा सवा केनेए खबर नें अति। राजाने रातरे तरँ तरँ ना विसार (वस्यार) आवता के कुोंणँ खोटु खोड़िलु मलें तो सूँ करे। पण खँर, जेम वाइना करम में ओवँ अेम थासे अेम करि जँ मलँ अेने देवि ना ओकम परमणे वाइ ने पण्णाववानु तँ कर्युं। रातर वइगइ ने सुरज नि कणे फुटतँ में दरवाजो उगाड़यो। राजा नो ओकम अतो कँ जँ पँल पुोल ने मोडँ मलँ अेने पकड़ि लाववु वेटले पेरा वालँए पँला कुँवोर ने पँल दिक्यो अेटले पकड़ि लिदो। कुँवोर कँ कँ मारो कोय् वाँक नति ने मुोँ तो परदेसि सूँ। पण अेनु कुोंण सँवले। सपाइ अेना आत पोग माँदि ने कसँरि मेँ लइ ग्या। राजानि सवा में वतरि उमराव वँटाता ने राजाए अँलण कर्युं कँ सपाइ जेने पकड़ि ने लावें इ वाइ नो वोर थाय्। सब सवा वस्यार

में पड़ि गइ कँ राजा ने आ सु़ँ सु़ज्यु पण सब साना र्‌या केम केम राजा ने कँवा नि केनिए अँमत नँ सालि । एटला में तो कुँवोर ने लइ ने सपाइ आवि पुगा । कुँवोर ने देकतँ में तो राजा खुसि थइ ग्यो ने सब सवा पण राजि राजि थइ गइ । कुँवोरनु रुप देकि ने सब राजि थ्यँ । पसँ नाम ठाम पुस्यु तो अरक नो पार नें र्‌यो । वाजतँ गाजतँ आला लिला वाँस वडावि ने वाइ ने कन्यादान दइ दिदु नें अरदु राज आँतिवेड़ा में राजाए आल्यु ने अरदु राज राणिये आल्यु । अेम पेला कुँवोर ने करमे जु़ोर कर्युं ते राजपाट सब मल्यु ।

(६) "जटलँ मुोँडँ अेटलि वातँ"

स्यार डोइयँ अति—

पँलि डोइ ने पुस्यु कँ डोइ सोमाउ केवु ?

डोइये क्यु–सप्पा खराप । सोमाआ ना तो कोय दाड़ा कँवँए कँ दाड़ानिए खबर नें पड़ँ कँ रातर नि ए खबर नें पड़ँ । सोविए कलाक वादलँ ने वादलँ । मेँ वरे, जाँक थाय, विजलि पड़ँ डापोरँ वाजेँ, साँटँ मेँ कँ जवाए नें ने किसवोड़ में ने कादोव मे कँटालो आवँ । अगवा नि ए आपँइ ने राँदवा नि ए आपँइ । गेमँलँ पड़ँ तारे तो मत पुसो ने वात । मने तो सियालोने ओनालो असल गमें । कुोरँ कुोरँ रँवु ने सु़ोरँ सु़ोरँ फरवु ।

विजि डोइ ने पुस्यु कँ डोइ डोइ सियालो केवो—

डोइये क्यु– सप्पा खराप । डोंणिया अेटलो तो दाड़ो थाय । कँवत कइ ए कै सियालानो दाड़ो तो वड कुटणियो । ने ढलक्यो कँ वलक्यो । कोय कामए ने परुसाय ने रातर पड़ँ । टाड़ वाय, अेम पड़ँ, खेति में दाग ने गेरु आवँ, आत-पोग फाटि जँए ने जिलतँ तो जाणँ मोत आवँ । मने तो सोमाउ नँ ओनालो असल गमें । कोक टाड नँ कोक ताप केवु लँस लागँ ।

तिजि डोइ नँ पुस्यु के डोइ डोइ ओनालो केवो—

पुसतँ पेलँ तो डोइ माँ वुोलि पड़यँ—सप्पा खराप । मोडु वुालो के ओनालानु तो । ओनाला नो तो दाड़ो कँवाय कँ दँव कँवाय । डोंगरा अेटलो भारि दाड़ो केमँ कर्यो खुटँस नें । सुइ सुइ ने थाको तोय रातर ए नें नेरँ । गरमि पड़ँ, घुोम थाय, लु वाय, उकाला उटेँ ने परेवो थाय अकलमणि आवँ, घोर में ए नें रँवाय कँ वाणे ए नें रँवाय, टाडा पाणि वना कालजँ सुकँए ने साय तर ने साय भुक । जिवतँ

मरवा सरकु लागें। दाड़ो ने रातर तरा तरा थइ जवाए। मने तो सोमाउ ने सियालो नेस गमें। टाडें टाडें रवूं ने ओनें ओनें खावु, थाय एटलु काम करवु नें तो सोड़ ताणि ने सुइ रेवुं।

सोति डोइ नु सेवाडु लम्बर लागु। पुस्यु के डोइ डोइ तने कइ रत गमें? डोइ बोलि–मने तो बेटा सोमाउए गमें–पाणि ने पड़ें तो खेति नें थाय नें पसें दनियें सा मातें जिवें। काकड़ें थेंए, ने पोकड़ें थेंए, ने सिकेणें थेंए, ने साल पाकें कें ने विजु धान पाकें ने सोमाआनि तरें तरें नि सिजें पण खावा नें मलें। मने तो सोमाउ गणुस गमें। सियालुए गमें–गों थेंए, मणा पाकें, धांटा ने ओविये खावा मलें लिलो ओलो खावा नो भावको पुरो थाय ने ओंवियें नां गोंगला वाढि ने गोड़ा गोतवाने गितें गावें ने गामनें सोरें ने वार्ता ए कँवि, केवा मजा आवें। मने तो सियालो गणोस गमें। ने ओनालानि तो वातस नें करवि। ओनालो तो राजा कँवाय। नें काम, नें काज। सियाला नं सुक्कन्यिं ने ओनाला ना विवा, खाइ पि ने खेंरसल्ला। ओनाला सरका तो मजा क्याएँ के। पामणावड़ि करिव, घोरनु धान टगारवु, विवा वाजन में जावु, काट्टे–टेबलें खावें ने फागणिया गावा। आम मारें मन तो तणें रतें सोना सरकि। आपड़ा डिलमेंन जोवोने सणा वना नाले। भगवने जे लिला करिए इ सब सोना सरकि। सोमाउ, सियालो ने ओनालो तणें ताजें।

(१०) "मुरको भाइ"

एक मुरको भाइ अता। आइ ने एकने एकस दिकरो, एटले लाड वदारे कयं। भण्या नें गण्या नें, ने ठोंट र्‌या। गाम में मनक एने "मुरको भाइ" कइ नेस सादतें। एक फेरो मुरको भाइ बेंग्नि आणु लेवा नेर्या। मुरका भाइ ना गोण आइ जाणति ति एटले क्यु के वेटा नारि में संवालि ने रेंजे ने खाति वेला वें तोला ओंनु खाजे। मुरको भाइ तो वेंरि ना वस्यार में खुस खुस थइ ग्याता एटले अरदु संवल्यु अरदु नें संवल्यु ने बोल्या के आइ तो सन्ता करेंस नकें। एम करि ने सारि में पुगा। जमाइ आव्या जाणि ने सारए जम्मानु कयुं भाइ भागियें ने नुतरु दिदु। पामणों नु जमोण एटले थोडु मोडु थ्यु। अणि आडे मुरका भाइ ने तो भुक लागि पण करें सों। काटा थइ ने वेंइ र्‌या। जम्मानु त्यार थ्यु एटले सब जम्मा वेटें एटला में मुरका भाइ नें आइ नि वात याद आवि। बोल्या कें मारें तो वे तोला खावानि आकड़ि सें। सब मनक नवाट पामि ग्यं कें आवि केंवि आकड़ि। पण

मुरको भाइ तो नें माग्या। साथु इ सायु। तोलि ने बँ तुला लाडु लिदो। सबे तो पेट भरि भरि ने खादु ने मुरको भाइ तो वँ तुला खाइ ने बेटा थ्या। वँ मकिना रोट खानार मुरका भाइ ने बँ तोला अन तो ओंट ने अजमानि फाकि बराबर थ्यु। धिरे धिरे भुकतो वदवा लागि। सब जमि जुटि ने पोत पोताने कामँ लाग्यं ने मुरको भाइ ठावा थइ ने ढोलिया मातँ बेंटा। सबँ करतँ साउ ने जमाइ वदारँ वाला रँए। अेटलँस तो केवत पड़ि कँ–"जमाइ वल्लँ साउ माणाँ मातँइ पासि आवि" मुरका भाइ ने साउजि सणंनि दाल वेंगातँ ग्यं ने वातँ करवा लागँ। अेटला में घणि वार थइ ते साउ मोतरवा गइ। अेटले दाल देकि ने मुरका भाइ ने मोडा में पाणि आव्यु ने घणुए कर्यु तोय जिव साया नें र्‌या ने जट उठि ने एक फाकड़ो दालनो भरि ग्या। फाकड़ो भरतँ में तो साउजि पासँ आवि ग्यं अेटले दाल सवँणि नें ने मोडामें साइ र्‌या। साउजिए तो वात सरु करि पण जमाइ ना ओंकारा बन थइ ग्या अेटले साउ बोलि के सुं ग्यु तमें केम बोलता नति? ने मोडा सामु जोयु तो सोज्यु थकु देकँणु। अेटले तो साउए दिकरि साते वैद तेड़ाव्यो। वैदे बराबर जांस करि ने क्यु कँ अबड़े मोडँ बोलावु पण भुरि भें लँए। जमाइ वाला कँ भें वालि। ते साउए सरत मानि लिदि। पसँ जमाइ ने वाणो एकि आडे लइ जाइ ने वैदे एक थाप वाइ ते सारियं दाल नेरि पड़ि। मुरको भाइ तो लाजि मर्या पण करें सों। जमाइ बोलता थ्या अेटले कोल परमणाँ साउए भें सोड़ि आलि। आम करते रातर पड़ि। मुरका भाइ ने वउ सुवा आव्यं अेटले पुस्यु कँ तमने आसासुकु सुं थ्युतु। सासि वात केवा सोगन दिदा अेटले मुरकँ भाइए सब वात कइ दिदि। विजे दाड़े मुरका भाइ नि लाज राकवा वेटियं आइ ने कइ ने तरत आणु वदा कराव्यु ने घेरे आवि ने मुरका भाइ ने मकिना तण टापु खवाड़्या तारे अेनि भुक गइ।

(११) "जिवतँ सम्पाड़ा"

एक डोइ ने एक ने एकस वेटो अतो। लाड कोड में भण्यो गण्यो नें, ने कालो अक्कर कुँवाड़े मारे अेवो र्‌यो। एक फेरो अेने वउनु आणु लेवा सारँ ग्यो। जमाइ ने मान में खउब सिरा पुड़ि बणाव्यं ने जमाइ ने जमाड़्या। जमाइए लँस सवाइ करि ने ग्याता। रँग रुप ने सेतरँ जोइ ने तो गामने मनकँ जमाइ ने खउब वकेंण्या पण मएला गोंण तो मादेवजि जाणे। खैर, खाइ पिने सब पटाल में वेटँ वेटँ वातँ करतँ तँ अेटला में तो डाकवालो आव्यो ने एक बेरँग कागद आलि ने पैसा लइ ग्यो। साउ तो खउब खुस थइ के आजे सपरवो दाड़ो ते जमाइए आव्या ने कागद पण

आव्यु । साउए कागद जमाइ ना खोला में नाक्यु ने क्यु के मुम्वेइ थकि तमारें साराजि नु देकाए । वाँसो ने सो लक्यु ए । जमाइग लिपापो उगाड़ि ने कागद काड्यु पण वाँसता नें आवें अेटले नजर फेरवि फेरवि ने स्यारि आडे जोवा माड्यु । कागद जोतो जाय ने रोतो जाय के मारे आइए घणु घणु कयुं पण ओं नें भण्यों ने आजे आवरु नु पाणि थाय अेवि वेला आवि । साउए जमाइनि आंक में आँउवु जोइ ने रोवा माँड्यु कँजेतेए खोटि बिना वणि अेटलेस जमाइ नि आँक में पाणि आव्यु । फेर वेरंग कागद अतु अेटले नक्कि पाका समिसार ओवेंस । अेम करि ने साउ तो पोक पाड़ि ने रोवा माँडि । आइ ने रोति देकि ने वेटिए पोक मेलि ने रोवा माँडि । आइ वेटि ने रोति जोइ ने जमाइ ए वदारे रोया । आम सब ने रोतें जाणि ने आडुइ-पाडुइ सब दाड़ि आव्यं ने पुस्या-कास्या वना सब रोवा भेगु रोवा मांडयं । मनक समज्यं के मुम्वेइ वाला मरि ग्या । अेटलेस आवो संपाड़ो माँड्यो । अेम करि ने सब संपाड़ो लइ ने जिलवा ग्यं ने सुड़ा-करम करावि ने पासें आव्यं । रोइ-पटेराइ ने सब वकेराइ ग्यं ने अेटला में तो रातर पड़ि । सोग अतो तोय पेलि बाइ धणि कने गइ ने पुसवा लागि कें कागद में सोंलक्यु ए, केटला दाड़ा थ्या ने सेरते सोंथ्यु ? अेटले बैरि ने रोति रजलति ने सोग करति जोइ ने पेला भाइ सासि वात वोलि ग्या के कोंणें मयुं-खयुं नति पण मने कागद नें वाँसता आव्यु अेटले मारें आँक में आँउवें आवि ग्यं ने आ सव खोटा संपाड़ा थ्या सें । वउ तो वापड़ि लेवें इ देवें पड़ि ने तरत आइ ने वात करि के "आतो तमारे आँड़ि-फोड़ जमाइ ए जिवतें सम्पाड़ा कराव्या ।" ने अण भण्या नि कालो-अक्कर कुँवाड़े मारवा नि वात कइ संवलावि रातो-रात सोनि सादि ने फेर सुड़ा पैराव्या ने विजें दाड़ें सवारे सवनें सादि ने वोवड़ा अक्कर नें लिदें वांसवा में भुल थइ अेम फेरवि तोल्यु ।

परिशिष्ट : ३

बाँसवाड़ा के बाबा लक्ष्मणदास का, विनोबाजी के गीता-प्रवचनों का वागड़ी अनुवाद

गीता-प्रवचनं

पेलो अध्याय

प्रास्ताविक वार्ता-अरजण नो रंज

(१) मध्ये महाभारतम्

वाला भाइयो,

आजथकी हों श्रीमद्भगवद्गीताना बारामें केवा बारो हों। गीतानो नें मारो सम्बन्ध तर्कथी पैंलीपारनो है। मारों खोंरियों मांना दूधथकी जैंटलों पर्‌यों है, ऐंना करते मारों हैयों नें बुद्धि वेए गीताना दूधथकी वदारे पोंषण पाम्यं हैं। ज्यं हैयानो संबंध होंए' ऐंयं तर्कनों ठेंकणों नती। तर्कनें सोंड़ी श्रद्धानें प्रयोगनी बे पांखंथकी गीता गगन में यथाशक्ति उड़ान मारतो रओं हों। हों घणों करीनें गीतानास वातावरण मएँ रओं हों। गीता मारो प्राण तत्व है। जारें हों गीताना बारामें कैंणाथकी वात करों हों, तारें गीता-सागर उपर तरों हों नें जारें ऐंकलो रओं हों, तारें ऐंणा अमृत सागरमएँ ओंडी डुबकी खाईनें वेई जओं हों। आणी गीता-मातानों चरित्र हों दीतवारें दीतवारें आपनें हंबरावों, एंम नक्की थ्यों है।

गीतानी गोंटवण महाभारतमएँ करी है। गीता महाभारतना वेसला भागमएँ ऐंक ओंसा दीवानें परतें रवी है, जेंनों उजवारों आक्का महाभारत उपर पड़ी र्‌यों है। ऐंकी आड़ी सो पर्व नें बीजी आड़ी बारे पर्व, ऐंणंना वेसला भागमएँ; ऐंवीस रीतें ऐंकी आड़ी हात अक्षौहिणी फौज नें बीजी आड़ी ईग्यारे अक्षौहिणी, ऐंणंनाए वेसला भागमएँ गीतानो उपदेश देवाई र्‌यो है।

ठेठ वागड़ी का सही नमूना

गीता-वसनँ

पँलो अदियो (अद्या)

पसताउ वार्ता-अरजुण नो रंज

(१) मा-भारत में

वाला भाइ,

आज़े थकि ओ ँ....गिताना बारामेँ केवा वाळो सुोँ। गितानो ने मारो समन कइ ने सकाय़ अेवो स़ँ। मारु खोळियु माँना दुदथकि ज़ेटलु पळयु स़ँ, अेना करते मारु अँयु ने मारि बुदि बँ गिताना दुदथकि वदारँ पोसण पाम्य़ँ से ँ। ज्य़ँ अँयानो समन ओवँ य़ँतकनु ठेकँणु नति। वाद-वँदवा सोड़ि सरदा ने उपयोगनि वे पाँकँथकि गिताना—अंगास में वणँ-अेटलु उड़तो र्य़ो सुोँ। ओं गणुँ करिने गिता-नास वातावरण में र्यो सुों। गिता मारो जिवस स़ँ। ज़ारे ओं गिताना बारा में केनेथकि वात करुों सुों, तारे गिता-सागर उपर तरों सुों ने ज़ारे अेकलो रों सुों, तारे अेणा अमरत सागर में ओंडि डुबकि खाइने वँइ ज़ों सुों। अणि गिता-माता नि मैमा ओं दितवारे-दितवारे आपने स़ंवळावुं, अेम नक्कि थ्यु स़ँ।

गितानि गोटवेंण मा-भारत में करि स़ँ। गिता मा-भारतना वँसला भाग में अेक ओंसा दिवा ने परते उबि स़ँ, अेनु अज़ुवाळु आका मा-भारत उपर पड़ि र्यु स़ँ। अेकि आडे सो परव ने विजि़ आडे बारँ परव, अेणँना वँसला भाग में; अेविस रिते अेकि आडे स़ात अक्सणि फोज़ ने विजि आडे इय़ारे अक्सणि, अेणँनाए वँसला भाग में गितानो उपदेश देवाइ र्य़ो स़ँ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

(अ)

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश

१. देशी नाममाला — हेमचन्द्र १९३८ ई०
२. पाइअलच्छी नाममाला — धनपाल (भावनगर संस्करण) १९९३ वि०
३. पाइअसद्द-महण्णवो — हरगोविंददास टीकमचन्द सेठ (सम्पादित) १९५३ ई०
४. विविध तीर्थकल्प — जिनप्रभसूरि १९९० वि०
५. कीर्तिकौमुदी — सोमेश्वर १८८३ वि०
६. सिद्ध-हेमशब्दानुशासन — हेमचन्द्र २००२ वि०
७. शब्दार्थ-चिंतामणि — शब्दकोश १९२१ वि०
८. प्राकृत-सर्वस्व — मार्कण्डेय (विजगापट्टम आवृत्ति) —
९. प्रबन्ध-कोश — श्री राजशेखरसूरि १९३५ वि०
१०. प्रबन्ध-चिन्तामणि — मेरुतुंग १९४४ वि०
११. प्राकृत-व्याकरण — हेमचन्द्र

(आ)

गुजराती

१. वाग्व्यापार—डॉ० हरिवल्लभ भायाणी १९५४ ई०
२. गुजरातनो मध्यकालीन राजपूत इतिहास—दुर्गाशंकर के० शास्त्री १९५३ ई०
३. गुजराती साहित्य परिषद की रिपोर्ट—Vol, III to VI, १९१३ ई० IV १९१९ ई०–V १९२३ ई०–VI–III.
४. गुजराती क्रमिक व्याकरण—प्रो० के० का० शास्त्री १९५१ ई०
५. पायानो गुजराती शब्दकोश— ,, ,, ,, ,, —
६. गुजराती वाग्विकास — ,, ,, ,, ,, १९५१ ई०
७. गुजराती रूप-रचना — ,, ,, ,, ,, —
८. अक्षर अने शब्द — ,, ,, ,, ,, १९४५ ई०

९. गुजराती स्वर व्यंजन प्रक्रिया—टर्नर, अनुवादक : प्रो० के० का० शास्त्री
१०. गुजराती भाषा शास्त्र—प्रो० के० का० शास्त्री
११. गुजराती शब्द अने अर्थ—डॉ० भोगीलाल सांडेसरा १९५४ ई०
१२. गुजराती भाषा अने साहित्य—ग्रन्थ-१ प्रो० न० भो० दिवेटिया, (अनुवाद)—के० का० शास्त्री १९३६ ई०
गुजराती भाषा अने साहित्य—ग्रन्थ-२ प्रो० न० भो० दिवेटिया, (अनुनाद)—के० का० शास्त्री १९३६ ई०
१३. जूनी पश्चिमी राजस्थानी—डॉ० तेस्सितोरी (अनुवाद) के० का० शास्त्री
१४. गुजराती भाषामां वर्ण-व्यवस्था—डॉ० टी० अेन० दवे० १९३३ ई०

(इ)

हिन्दी राजस्थानी आदि

१. हमारी आदिम जातियाँ—डॉ० भगवानदास केला-भारतीय ग्रन्थ माला, प्रयाग
३. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी वि० २००० आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता
३. राजस्थानी भाषा—डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, १९४९ ई० राजस्थानी विद्यापीठ, उदयपुर
४. मालवी और उसका साहित्य—डॉ० श्याम परमार-राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
५. मालवी लोकगीत—डॉ० श्याम परमार—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
६. मालवी कविताएँ—मालव लोक साहित्य परिषद प्रकाशन
७. मालवी : एक भाषा शास्त्रीय अध्ययन—डॉ० चिंतामणि उपाध्याय—मगल प्रकाशन, जयपुर
८. निमाड़ी और उसका साहित्य—डॉ० कृष्णलाल हंस १९६० हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, प्रयाग
९. निमाड़ी लोकगीत—रामनारायण उपाध्याय
१०. भारतीय आर्य-भाषा और हिन्दी—डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी १९५२ ई०
११. भोजपुरी भाषा और साहित्य—डॉ० उदय नारायण तिवारी १९५४ ई०
१२. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० मोतीलाल मेनारिया स० २००६ वि०
१३. राजस्थान के लोकगीत—सूर्यकरण पारीक एवं नरोत्तम स्वामी
१४. हिन्दी और प्रादेशीक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास—शमशेरसिंह नरूला
१५. वनारसी वोली—द्रष्टव्य वाचस्पति उपाध्याय
१६. वागड़ नो वरात—सूरजमल वागड़िया, डूंगरपुर
१७. वचनिका—खाडिया जगाकृत—संपादक डॉ० रघुवीरसिंह और काशीराम शर्मा

१८. वीर विनोद—मेवाड़ का वृहद् इतिहास
१९. राजपूताने का इतिहास ग्रंथ ३, भाग-१ स्वर्गीय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा १९२७ ई०
राजपूताने का इतिहास ग्रंथ 3, भाग-२ स्वर्गीय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा १९२८ ई०
२०. गीता प्रवचनें (वागड़ी)—बाबा लक्ष्मणदास बाँसवाड़ा राजस्थान
२१. भीलों के लोक गीत—हरिहर पाठक
२२. लोकगीत—देवेन्द्र सत्यार्थी
२३. राजस्थानी व्याकरण—सीताराम लालस, जोधपुर
२४. मारवाड़ी व्याकरण—पं० रामकर्ण शर्मा, जोधपुर
२५. राजस्थानी भाषा एवं मान्यता के प्रश्न—पुरुषोत्तमलाल मेनारिया
२६, कांकरोली का इतिहास—कंठमणि शास्त्री
२७. हिन्दी व्याकरण—कामता प्रसाद गुरु सं० २००६ वि०
२८. हिन्दी भाषा का इतिहास—धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
२९. वृहत् हिन्दी कोश—
३०. भाली हिन्दी कोश—नेमिचन्द्र जैन—१९६२
३१. संक्षिप्त राजस्थानी व्याकरण—नरोत्तमदास स्वामी–१९६०
३२. ध्वनि-विचार (मराठी)—डॉ० ना० गा० कालेलकर–१९५५
३३ मराठी भाषे चा विकास—(जुल् ब्लोक) अनु० वा० गो० परांजपे–१९४१ ई०
३४. भाषा विज्ञान—बाबूराम सक्सेना–१९६१

(ई)
अंग्रेजी

1. Formation of Konkeni—Dr. S.M. Katre—1942.
2. Collected works of R.G. Bhandarkar, Vol. IV—Govt. Oriental Series, Class B. No. 4—1929.
3. Old Western Rajasthani—Tessitory L.P.—1914-15-16.
4. Evolution of Oudhi—B. R. Saxena. Indian Press, 1937. Allahabad.
5. Linguistic Survey of India—Griarson G A. Vol. IX, Part II 1908 and III 1907
6. Journal of Guj. Res. Soc. Vol. X, April 1948.
7. Journal of Guj. Res. Soc. Vol. IV, April 1952 No. 2.

8. Dictionary of Nepal Language.—R. I. Turner.
9. Language—Bloomfield. 1935
10. Index of Language Names.—Griarson G. A.
11. The Languages of India—An our India Publication.
12. A Linguistic study of Bundeli, M. P. Jaiswal. 1962
13. The Bhalesi Dialect—Siodheshvar Varma 1948.

(उ)
हस्तलिखित (अप्रकाशित)

१. योगिराज मावजी के ग्रन्थ—
(१) हरि मन्दिर सावला (डूँगरपुर)
(२) हरि मन्दिर शेषपुर (मेवाड़)
(३) हरि मन्दिर पूँजपुर (डूँगरपुर)
(४) हरि मन्दिर, सुथारवाड़ा, (बाँसवाड़ा)
२. हस्तलिखित पोथियां—
मेरे घर में से प्राप्त **पांच पोथियां** जो मेरे पास हैं।

(ऊ)
पत्र-पत्रिकाएँ

१. "वाग्वर"—अंक १ से ४—वा० सा० परि० डूँगरपुर
२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, संवत् १९७७।

———

प्राक्कथन

वागड़ी भाषी प्रदेश वागड़ एक प्राचीन क्षेत्र है। आदि मानव के आवास का मुझे कोई प्रमाण नहीं मिला है परन्तु मेरी शोध में यह सिद्ध हुआ है कि क्षत्रपों, शकों और हूणों के आगमन के पूर्व भी यहाँ मानव वस्ती थी। शक-क्षत्रपों के सिक्के यहाँ से प्राप्त हुए हैं और विक्रम की ५-७ शती के ताम्रपत्र भी उपलब्ध हुए हैं। यहां भील मांडलिक शासन था और बाद में अन्यान्य प्रजाओं के आगमन से आज यह पंचरंगी प्रजा का विशाल प्रदेश है। 'वटपद्रक' (आज का डूंगरपुर जिले का बड़ोदा) और 'अत्यूणक' [तलकपुर पाटण जो बाँसवाड़ा जिले के आज के अर्थूना और तलवाड़ा का विस्तार था] वागड़ की प्राचीन राजधानियाँ थीं। डूंगरपुर और बाँसवाड़ा तो संयुक्त वागड़ में से पृथक हुए राज्य नगर बने। १५२६ में वागड़ का बटवारा हुआ था। वि० सं० १०५० तक के लेख भी उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार वागड़ एक ऐतिहासिक, सामाजिक और अपनी आगवी संस्कृति वाला प्राचीन क्षेत्र रहा है।

वागड़ी बोली का उद्गम अपभ्रंश से है। अपने विकास में इसे अनेक भाषा बोलियों का योग मिलता रहा है। गुजराती के साथ इसका निकट का सम्बन्ध है और भीली तथा गुजराती के बीच में यह (वागड़ी) सेतु का काम करती है। १५ लाख लोगों की यह बोली अपने आप में पूर्ण है। यह बोली मेरी मातृ-भाषा होने से इसके उद्भव और विकास का अवलोकन करने की मेरी इच्छा हुई और खासकर डॉ० ग्रियर्सन के भ्रामक विधानों से इसके सही स्वरूप को प्रस्तुत करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। डॉ० ब्लूम ब्लॉक तथा अन्य भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के ग्रन्थों का अध्ययन करने के पश्चात् प्रसिद्ध भाषा शास्त्री पद्मश्री प्रो० के० का० शास्त्री (विद्या वाचस्पति) के मार्ग दर्शन में सतत सात साल के सख्त परिश्रम के बाद मैं "वागड़ी बोली का स्वरूप और उसका तुलनात्मक अध्ययन" उपस्थित कर सका। मेरे परीक्षक पूना के प्रखर भाषाविद डॉ० एन० जी० (नारायण गोविन्द) कालेलकर ने मेरी कसकर कसौटी की और आखिर में मैं सफल सिद्ध हुआ। पी-एच.डी. की पदवी मिली इसका आनन्द कम नहीं रहा परन्तु मातृ बोली का तर्पण करके उऋण हुआ यही गौरव अनुभव हुआ।

राजस्थान के डूँगरपुर तथा बाँसवाड़ा जिलों से बने विशाल वागड़ प्रदेश में ब्राह्मण से लेकर भील तक एक समान बोली "वागड़ी" व्यापकता से बोलते हैं। वागड़ी का स्वरूप देखने से उसका सम्बन्ध अपभ्रंश काल तक आसानी से पहुँचता है।

जब पश्चिम मारवाड़ में गुर्जर प्रतिहारों की सत्ता थी उस समय अपभ्रंश के एक विशिष्ट प्रकार का विकास वहां हुआ था। मेवात, ढूंढाड़ी का प्रदेश (जयपुर), हाड़ौती का प्रदेश (कोटा), मालवी का प्रदेश (मालवा), निमाड़ी का प्रदेश (म० प्र०), मेवाड़ (उदयपुर मेवाड़), वागड़ (डूंगरपुर बाँसवाड़ा के क्षेत्र और उत्तर गुजरात (उस समय का सारस्वत मण्डल) एवं सौराष्ट्र में एक समान अपभ्रंश व्यापक स्वरूप में बोली जाती थी। गुजरात के चालूक्य राजाओं का उत्तर गुजरात पर शासन शुरू होने के पूर्व पश्चिम मारवाड़ के विशाल प्रदेश का नाम ही गुजरात या गुज्जरत्ता (सं० गुर्जरत्रा) था। उस प्रदेश की अपभ्रंश का नाम गौर्जर था, जिसका सम्बन्ध पंजाब की टक्क अपभ्रंश के साथ घनिष्ट प्रकार का था।

चालुक्य राजाओं के समय में उत्तर गुजरात के लिये गुजरात संज्ञा शुरू हुई और समय जाने पर पश्चिम मारवाड़ की गुजरात संज्ञा दूर हो गई और चालूक्य राजाओं के प्रदेश के लिए रूढ़ बनती चली। किन्तु भाषा का सम्बन्ध ऊपर बताये सभी प्रदेशों में समान था जो कि प्रान्तीय विभागो में विभक्त बनता गया। ई० की 14 सदी के अन्त भाग तक यही स्थिति थी।

उस समय में मारवाड़ी, ढूंढाड़ी, मेवाती, हाड़ौती, निमाड़ी और गुजराती अपने अपने प्रदेशों में मर्यादित होती जाती थी। डॉ० तेस्सीतोरी ने पश्चिमी राजस्थानी के व्याकरण की टिप्पणियां लिखी उनमें जो स्वरूप दिया है वह मारवाड़ी, गुजराती का सम्मिलित मानकर दिया है। वहां उपयुक्त ग्रन्थों में से सिर्फ पांच तत्कालीन मारवाड़ी के हैं और उन्नीस गुजराती प्रधान हैं। और दोनों उस समय तक भाषा नहीं बल्कि बोली ही थीं। दूसरे प्रदेशों में से सिर्फ ढूंढाड़ी के ग्रन्थ मिले हैं, जिनमें जयपुर के प्रदेश की ढूंढाड़ी का प्रान्तीय स्वरूप स्पष्ट दीखता है। अन्य प्रदेशों के ग्रन्थ देखने में नहीं आये हैं। तो भी उन प्रदेशों की बोलियों के स्वरूप का अध्ययन करने से उस प्राचीन समय में एक स्वरूप होने का विश्वास हो जाता है। एक नाम देना हो तो हम या तो गुजर भारवा दें अथवा राजस्थानी दें। इन सब बोलियों का एक ही कुल है। राजस्थानी कहने से कुल की दृष्टि मे वह ऊपर बताये विशाल प्रदेशों की भाषा का समान कुल है। इस कुल की बोलियों में 'वागड़ी' गुजराती एवं भीली को जोड़ने वाली कड़ी का काम करती है और गुजराती से निकट का सम्बन्ध रखती है। वागड़ी तथा गुजराती के पूर्व रूप का सम्बन्ध प्राचीन राजस्थानी में एक रूप था। यह मेरे मत से निर्विवाद तथ्य है। और यही बात बताने का इस ग्रन्थ में मेरा विनम्र प्रयत्न है।

वागड़ के लोक साहित्य का संग्रह भी इस दारान कर सका और १५०० कहावतें–मुहावरे, २०० पहेलियां, ५० भजन–पद, ३०० लोक गीत, ५० लघु कथाएँ, वार्ताएँ आदि का संग्रह–संपादन तथा लेख प्रकाशन भी हो सका। मेरे लगभग १०० लेख तथा रिसर्च पेपर प्रकाशित हो चुके हैं। गलालेंग तथा अन्य ऐतिहासिक शौर्य कथाओं को प्रकाश में लाने का सौभाग्य भी मुझे ही मिला। गुजरात सरकार ने मेरे कार्य के कारण ही गुजरात राज्य लोक साहित्य समिति में दो वर्ष के लिये मेरी नियुक्ति की है और समिति ने मेरे वागड़ के लोक गीत (१५१) छापे हैं। राजस्थान सरकार का घ्यान शायद वागड़ की इस ओर नहीं गया है ! बहरहाल मैंने अपना कर्त्तव्य अदा किया है। राजस्थान भारती (बीकानेर), मरु भारती [पिलानी], सप्तसिंधु (पटियाला), भाषा (भारत सरकार), विशाल भारत, इण्डियन फोकलोर आदि में मैंने लेखों द्वारा वागड़ उसकी भाषा, समाज तथा संस्कृति एवं लोक साहित्य की पहचान दी है। मेरे तमाम कार्यों में सहायक होने वाले सभी स्वजनों का मैं ऋणी हूँ और खासकर मेरे गुरु प्रो० केशवराम काशीराम शास्त्री जी का तो आभारी हूं। पंचशील प्रकाशन के सचालक श्री मूलचन्दजी गुप्ता तथा उनके प्रतिनिधि श्री कुंभसिंह राठौड़ का भी मैं अनुग्रहीत हूं कि उन्होंने इस महा निबन्ध के प्रकाशन का बीड़ा उठाया। राजस्थान के मुख्य मंत्री माननीय श्री हरिदेवजी जोशी वागड़ी भाषी हैं, उन्होंने मेरे कार्य की प्रशंसा कर मुझे उत्साहित तथा अनुग्रहीत किया है। मैं इन सबका हार्दिक आभारी हूँ।

डॉ० लालशंकर जोशी

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

बागड़ी-भाषी प्रदेश

परिचय

बागड़ प्रदेश तीन हैं—१. कच्छ-गुजरात की सरहदों के बीच का, २. गुजरात-मेवाड़-मालवा की सरहदों के बीच का और ३. बीकानेर के नजदीक का।

इनमें से हमारा बागड़ दूसरा है, जो भूतपूर्व डूंगरपुर तथा बाँसवाड़ा राज्यों का प्रदेश है और राज्यों के नये विभाजन में "राजस्थान" के अन्तर्गत हुआ है।

यह बागड़ प्रदेश मेवाड़, मालवा और गुजरात के मध्य में अवस्थित है, तथा वृहद् राजस्थान का दक्षिण-पूर्वी अंग है, जो २३° १५′ से २४° १′ उत्तर–अक्षांस और ७३° १५′ से ७४° २५′ पूर्व देशान्तर के बीच फैला हुआ है।

क्षेत्रफल एवं आबादी

इसका क्षेत्रफल करीब ४,००० वर्ग मील तथा इसकी आबादी १०–१२ लाख है।

नामोल्लेख

इस प्रदेश का **बागड़** आदि नाम करीब एक सहस्त्राब्दी से प्रचलित पाया जाता है। पुराने शिला-लेखों, ताम्र-पत्रों, जीवन-चरित्रों तथा अन्य प्रशस्तियों आदि में इसका उल्लेख प्राप्य है। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के विद्वानों ने इसे **वार्गट, वागट, वग्गड, वैयागड** एवं **वाग्वर** आदि शब्दों से भी अभिलिखित किया है—

१. वार्गटिकान्वयोद् भूत सद् विप्रकुल संभवः (।।३०।।)
विं० सं० १०३०, आषाढ १५, शेखावाटी के हर्षनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति (A. E. Vol. 2 P/22.)

२. जयंति श्री वागट संघः।
राजपूताना म्यूजियम की एक जैन मूर्ति का लेख, वि. सं. १०५१

३. संवत १२४२ वर्षे कार्तिक सुदि १५—भीमदेवीय विजय राज्ये **वागड** वटपद्रक मंडले—अमृतपाल देवीय राज्ये—

मेवाड़ के वीरपुरा (जय समुद्र के निकट) गाँव के किशनाजी ब्राह्मण के पास वाले ताम्र पत्र से।

४. संवत् १२६१ वर्षे पौष सुदि ३ रवौ **वागड** वटपद्रके महाराजाधिराज श्री सिहडदेव विजयो दयी—

डूंगरपुर के भेकरेड़ गाँव के निकट विजवा माता के मंदिर का लेख।

५. संवत् १३०८ व्रषे कातीक सुदि १५ सोम दिने अद्येह **वागड** मंडले महाराजकुल श्री विजयनाथ देव—

मेवाड़ में जयसमुद्र के निकट भाडोल गाँव के शिव मंदिर के लेख से.

६. संवत् १३४३ वैशाख त्र (सित) १५ (SS) रवा वद्येह **वागड** वटपद्रके महाराजकुल श्री वीरसिह देव विजय राज्ये—

डूंगरपुर के माल गाँव से प्राप्त तांम्रपत्र (राज. म्यू. अजमेर) की छाप।

७. संवत् १३५६ वर्षे आषढ सुदि १५ **वागड** वटपद्र के महाराजकुल श्री वीरसिंहदेव कल्याण विजय राज्ये—

डूंगरपुर के वमासा गाँव के शिलालेख की छाप से।

८. तओ हम्मीर जुवराओ **वग्गड** देसं मुहडासयाइं नयराणिय भंजिय आसावल्लीए पत्तो। कण्णदेव राओ अनट्ठो।

वि. सं. १३६० जिनप्रभसूरि विरचित विविध तीर्थकल्प, पृ. ३०

सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १० में से।

९. पूर्णतल्ल गच्छे श्रीदत्त सूरिः प्राज्ञः **वागड़** देशे वटपद्रं पुरं गतः। तत्र स्वामी यशोभद्र नामा राणकः ऋद्धिमाना।

वि. सं. १४०५, राजशेखर सूरि कृत प्रवन्ध कोश, में से।

१०. इक्षु क्षेत्र पवित्र भूविजयते नीवृद्धरो **वागडः** ॥३॥

वि. सं. १५२५, डूंगरपुर के आंतरी गाँव के शांतिनाथ मंदिर की प्रशस्ति

११. गर्जद् गर्जपटोत्कटोर्मि विकटं श्री गूर्जराधीश्वरा-त्पर्सत्सैन्यमपारमर्णवभिव व्यालो (डप य): सर्वतः॥

संजग्राह समग्रसार कमलां वीराधि वीरः सत—ग्दोपीनाथ तथा प्रसिद्धिम भजच्छी **वागडा** खंडलः ॥६॥

वि. सं. १५२५, डूंगरपुर के आंतरीगाँव के शिलालेख की छाप से।

१२. अन्वाय पत्र वल्लीमल्ली मुख्यात्यमिल्ल मृग पल्लीः ॥
जित्वा यो निः शल्यीचकार वागडं देशं ॥६१॥
वि. सं. १५२५, डूंगरपुर के आंतरी गाँव के शांतिनाथ मंदिर के लेख से।

१३. संवत् १५७१ वर्षे कार्तिक वदी (दि) २ शनौ वाग्वर देशे राजाधिराज रावल श्री उदयसिंहजी विजय राज्ये दूजनपुरे—
बाँसवाड़ा के नौगामा गाँव के जैन मंदिर की प्रशस्ति से।

१४. संवत् १५८५ वर्षे चैत्र वदि १२ सोमे वाग्वड् देशे राजाधिराज रावल श्री उदयसिंह विजय राज्ये—
डूंगरपुर जिले के वेजा गाँव में पारसनाथ भगवान की मूर्ति पर संस्कृत में लेख।

१५. स्वस्ति श्री नृप विक्रमार्क्क समयातीत संवत् १५९३ वर्षे वैशाख वदि १ गुरौ अनुराधा नक्षत्रे शिवनाम योग (गे) वैयागड़ देशे राजश्री रावल जगमालजी विजय राज्ये—(बाँसवाड़ा के छींछ गाँव की ब्रह्मा की मूर्ति पर लेख।

१६. अस्ति श्रीमान मानुषी मंडल खंडल मंडले "जंबू द्वीप गते खंडो भारतो-स्तिशु भारत ॥१॥ तत्र देशा नृपा देशा कानं संति सहस्रशः। तथापि सं प्रशंसंति गुरुणा वागड़नाम भिः"।
वि. सं: १६४७, डूंगरपुर के सूरपुर गाँव के माधवराय मंदिर से।

इन शिला-लेखों, ताम्र-पत्रों तथा प्रशस्तियों से वागड़ विषयक नामोल्लेख के अलावा उस काल में हुए शासकों के अधीनस्थ वागड़ के सीमा-विस्तार का भी सबूत मिल जाता है।

प्राचीन वागड़

प्राचीन "वागड़" देश में वर्तमान डूंगरपुर और बाँसवाड़ा राज्यों तथा मेवाड़ राज्य का कुछ दक्षिणी विभाग अर्थात् छप्पन नामक प्रदेश का समावेश होता था।

राजधानी

परमारों के शासन काल में उनकी मुख्य राजधानी उत्थूणक (अर्थूणा) नगर थी। वागड़ से परमारों का राज्य उठ जाने पर अर्थूणा के स्थान पर बड़ौदा वागड़ की राजधानी बनी। सोलंकी राजा भीमदेव के सामंत अमृतपालदेव, जो गुजरात वालों की ओर से वागड़ का शासक था, के वि. सं. १२४२……और महारावल सीहड़देवजी के वि. सं. १२९१ तथा……महारावल वीरसिंहदेव के वि. सं १३४३ व १३५९ के लेखों में उनकी राजधानी बड़ौदा ही मिलती है।[1]

---

१. देखो डूंगरपुर राज्य-पत्र श्रावण सुद २, संवत् १९९७, पृष्ठ १६।

जब से डूँगरपुर नगर की स्थापना हुई और वहाँ राजधानी स्थिर हुई तभी से वागड़ को "डूँगरपुर राज्य" भी कहने लगे। पीछे से इस राज्य के दो विभाग हुए, जिनमें पश्चिमी विभाग "डूँगरपुर राज्य" और पूर्वी विभाग "बाँसवाड़ा राज्य" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[2]

इतिहास एवं शासन

इस वागड़ में सबसे परले क्षत्रप वंशियों का राज माना जाता है।[3] ये क्षत्रप जाति के शक थे। शकों के बाद गुप्तों, हूणों, पडिहारों और फिर परमारों का वागड़ पर आधिपत्य रहा मालूम होता है।[4] वागड़ के परमार मालवे के परमारवंशी राजा वाक्पतिराज के दूसरे पुत्र डंवरसिंह के वंशज थे।[5] उनके अधिकार में वागड़ तथा छप्पन का प्रदेश था। संभव है कि डंवरसिंह को वागड़ का इलाका जागीर में मिला हो।[6] वि. सं १११६ का पाणाहेड़ा गाँव (बाँसवाड़ा जिला) के शिलालेख तथा वि० सं० ११३६ की अर्थूणा गाँव (बाँसवाड़ा जिला) की मंडलेश्वर के शिवालय की प्रशस्ति से परमारों के वागड के स्वामित्व का प्रमाण मिलता है। मंडलीक, जिसे मंडनदेव भी कहते थे, ने वि. सं. १११६ में पाणाहेड़ा गाँव में अपने नाम से मंडलेश्वर नामक शिव मंदिर बनवाया।[7] वि. सं. ११३६ में अर्थूणा नगर में मंडलीक के पुत्र चामुंडराज ने अपने पिता के निमित्त मंडनेश (मन्डलेश्वर) का विशाल शिवालय बनवाया।[8] इस प्रकार वि. सं. १११६ से वि सं. ११६५ और

---

२. डूंगरपुर राज्य का इतिहास—ओझा, पृष्ठ ३।

३. डूंगरपुर राज्य का इतिहास—ओझा, पृष्ठ २०।

४. डूंगरपुर राज्य का इतिहास—ओझा, पृष्ठ २३।

५. राजपूताने का इतिहास, जिल्द–१—ओझा, पृष्ठ २०६।

६. डूंगरपुर राज्य का इतिहास, जिल्द–१—ओझा, पृष्ठ २३।

७. (i) राजपूताना म्यूजियम की ई० सन् १६१६ की रिपोर्ट, पृष्ठ २–३।
   (ii) डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० २५।

८. (i) अर्थूणा के मण्लेश्वर के शिवालय की प्रशस्ति।
   (ii) डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० २५।

११६६ तक के प्राप्य शिलालेखों से छप्पन सहित वागड पर परमारों के शासन का पता चलता है।[९-१०] ये परमार शिव भक्त थे।

विक्रम की बारहवीं-तेरहवीं सदियों में वागड़ पर गुजरात के सोलंकियों का भी प्रभुत्व रहा नजर आता है।[११] मेवाड़ में जय समुद्र (ढेवर सरोवर) के निकट वीरपुर (गातोड़) गाँव से वि. सं. १२४२ कार्तिक सुदि १५ रविवार का भीमदेव (भोला भीम) दूसरे के सामंत महाराजाधिराज अमृतपाल का एक दान-पत्र मिला है, उससे तथा डूँगरपुर के वड़ा दीवड़ा गाँव के शिव-मंदिर की मूर्ति के आसन पर वि. सं. १२५३ के लेख से ज्ञात होता है, कि उक्त संवत् तक भीमदेव का वागड़ पर अधिकार अवश्य था।[१२]

वि. सं. १२३१ के आसपास गुजरात के सोलंकी राजा अजयपाल की मेवाड़ के गुहिल वंशी राणा सामंतसिंह के साथ लड़ाई हुई।[१३] सामंतसिंह ने यह लड़ाई गुजरात से स्वतंत्र होने के लिये लड़ी थी और उसने अजयपाल को बुरी तरह घायल भी कर दिया।[१४] परंतु अजयपाल को सख्त घायल करने का बदला लेने के लिए

---

९. राजपूताने का इतिहास—ओझा, जिल्द–१, पृ० २०७।

१०. इसके प्रमाण में वि० सं० ११३६ का एक लेख।
वागड़ के परमारों की प्राचीन राजधानी अर्थूणा नगरी (बाँसवाड़ा) से और वि० सं० १२४२, १२७७, १३०६ व १३०८ के चार लेख छप्पन से ही उपलब्ध हैं। छप्पन से प्राप्त लेखों का उल्लेख डूंगरपुर राज्य के इतिहास में हो चुका है और अर्थूणा के वि० सं० ११३६ के लेख का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है। "वागड़ के परमार राजा चामुंड राज ने अपने पिता मंडलीक (मंडनदेव) के निमित्त मंडनेश (मंडलेश्वर) का शिवालय बनवाया और उसके निर्वाह के लिये उसने जो जो कर लगाये थे उनमें छप्पन के महाजनों के प्रत्येक घर से चैत्री (पूर्णिमा) और पवित्री (चतुर्दशी) को एक एक द्रम्म, जो चार आने के मूल्य का चाँदी का छोटा सिक्का था, लेने का नियम भी बाँधा था ऐसा उक्त शिवालय की प्रशस्ति से ज्ञात होता है—

तस्योच्छपनके तेन वणिजां प्रतिमंदिरम ॥
चैत्र्यां द्रम्मः पवित्र्यां च द्रम्म एक प्रदापितः ॥

११. अमृतपाल तथा भीमदेव (१२३४–९८) के समय के वि० सं० १२४२ (वीरपुर) तथा (वड़ा दीवड़ा) के वि० सं० १२५३ के लेखों से।

१२. डूंगरपुर राज्य का इतिहास—ओझा, पृ० ५१।

१३–१४. सामंतसिंह युद्धे हि श्री अजयपाल देवः प्रहार पीडया मृत्यु कोटिमायातः कुमार नाम्ना पुरोहितेन श्री कटुकेश्वरमाराध्य पुनः स जीवितः।
"सुरथोत्सव", सर्ग १५–सोमेश्वर।

गुजरात वालों ने सामंतसिंह पर चढ़ाई कर उससे मेवाड़ का राज्य छीन लिया।[१५] जिससे उसने वागड़ में जाकर नया राज्य स्थापित किया। सभवतः यह घटना वि. सं. १२३२ के आसपास हुई होगी।[१६]

डूँगरपुर के बोरेश्वर के मंदिर के शिलालेख से निश्चित है कि वि. सं. १२३६ में सामंतसिंह वागड़ का राजा था। परन्तु उपर्युक्त १२४२ (वीरपुर) के लेख से स्पष्ट है कि गुजरात वालों ने सामंतसिंह से वागड़ का राज्य छीनकर गुहिल वंशी विजयपाल या उसके पुत्र अमृतपाल को दिया। अमृतपाल वि सं. १२४२ में बड़ौदा का स्वामी था। वह सामंतसिंह के ही वंश का था।[१७]

उस समय वागड़ की राजधानी वर्तमान बड़ौदा गाँव (डूँगरपुर जिला) थी जो **वटपद्रक** कहलाता था।[१८] इसका प्रमाण डूँगरपुर के वैजवामाता के मन्दिर की दीवार में खुदा हुआ वि. सं. १२९१ का सीहड़ देव का तथा वि. सं. १२४२ का अमृतपाल देव का लेख (मेवाड़ के वीरपुर गाँव के किशनाजी के ताम्र पत्र पर) है।

सीहड़ देव के पीछे विजयसिंह देव वागड़ का स्वामी हुआ। छप्पन के जगत् गाँव के देवी मंदिर के लेख में लिखा है कि विजयसिंह देव ने वि. सं. १३०६ में अंबिका देवी के मंदिर पर सुवर्ण दंड चढ़ाया।[१९] उसका दूसरा लेख छप्पन के झाडोल

---

१५. गुजरातनो मध्यकालीन राजपूत इतिहास पृ० ४१२–१३ और राजपूताने का इतिहास खंड १, पृ० ४५१, टि० २, पृ० ४५८ तथा पृ० ४५२।

१६. डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ४६।

१७. डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ४६, ५०।

१८. यह डूंगरपुर से २८ मील पूर्व में वर्तमान बड़ौदा गाँव है जो वागड़ की प्राचीन राजवानी था। वड़ौदा नाम के एक से अधिक नगर होने के कारण वागड़ का वड़ौदा वतलाने के लिये उसके साथ वागड़ शब्द जोड़ दिया जाता था ताकि भ्रम न रहे।

१९. संवत् १३०६ वर्षे फागुण सुदि ३ रवि दिने—देवी अंविका (यै) सुवन डँड प्रतिठित। गुहिलवंसे रा० जयतसिह पुत्र सीहड पोत्र वीजयस्यंघ देवेन कारापितं—

गाँव के विश्वनाथ मंदिर में लगा हुआ है।[२०] इसमें विजयसिंह देव का वागड़मंडल (छप्पन सहित) का स्वामी होना स्पष्ट है।

विजयसिंह देव के बाद वीरसिंह देव का राजा होना उसके मिले लेखों से पाया जाता है।[२१-२२] वीरसिंह के बाद रावल भूचंड तथा (उसके पुत्र) डूँगरसिंह (सं. १४१५) एवम् बाद में कर्मसिंह ने वागड पर राज किया। बाद में महारावल उदयसिंह ने 'वागड़ राज्य' के दो विभाजन कर एक भाग (पश्चिमी-अब डूँगरपुर) ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज के लिये रक्खा और दूसरा (पूर्वी, अब बाँसवाड़ा) जगमाल[२३] को दिया।

इस प्रकार विक्रम की पहली सदी से लेकर चला आने वाला संयुक्त वागड़ सोलहवीं सदी विक्रमी में डूँगरपुर और बाँसवाड़ा के दो राज्य भागों में बँट गया।

सीमा-विस्तार

प्राचीन समय में वागड़ का विस्तार उत्तर में मेवाड़ के पारसोला, सोम नदी के परले पार बूँदा के मऊन्दर, मेवल के जगत गाँव और कुरावड़ के आठ गाँव,

---

२०. संवत् १३०८ वर्षे—अद्येह वागडमंडले महाराज कुल श्री (वि) जयसिंह—
राज्ये ग्याडोल ग्रामे श्री विश्वनाथ देव—
(वि० सं० १२३३ का लेख महारावल सीहड़देव का और वि० सं० १३०६ का महारावल विजयसिंह का जगत गाँव के अंबिका माता के मंदिर के एक स्तंभ पर खुदे हुए हैं। वि० सं० १३०८ का विजयसिंह का लेख ग्याडोल गाँव के विश्वनाथ के शिवालय में है। इससे ग्याडोल तथा जगत गाँव तक वागड़ का राज्य होना निर्विवाद है। जगत गाँव डूँगरपुर की सीमा से ३२ मील दूर है जिसमें सारा छप्पन का प्रदेश गिना जाता है।)
देखो डूँगरपुर राज्य-पत्र, मार्गशीर्ष शुक्ला ६ संवत् १९९७, पृ० १६।
उपर्युक्त लेखों से वि० सं० ११३६ से १३०८ तक छप्पन पर वागड़ वालों का अधिकार रहना पाया जाता है।

२१. संवत् १३४३—वागड़ वटपद्रके—श्री वीरसिंहदेव—
डूँगरपुर के नाल गाँव से प्राप्त ताम्र पत्र

२२. संवत् १३५१—वागड वटपद्रके—श्री वीरसिंहदेव—
डूँगरपुर के वनासा गाँव से प्राप्त शिलालेख।

२३. छींछ गाँव (बाँसवाड़ा जिला) के ब्रह्मा के मन्दिर का शिलालेख इसमें जगमाल को महारावल लिखा है—
स्वस्ति श्री नृप—संवत् १५९३ वर्षे—
वैवागड देशे राज श्री रावल जगमालजी—विजय राज्ये—।

छप्पन के भाडोल और परसाद, **खड्ग** के ऋषभदेव और पीपली तथा नीचली **भोमट** के बावला वाड़ा; **पश्चिम में गुजरात** के घोड़ादर (विजय नगर), पाल (पोलाँ), ईडर (साबर कांठा) के मोरी, मेघरज, देवगदाघर (साँवलाजी : शामलाजी) और मोडासा; **दक्षिण में लूनावाड़ा** के पानरवाडा, कडाणा के डींगलवाड़ा, सूँथ के मूल सूँथ और रामपुर शहर (संत-रामपुर), पँचमहाल के भालोद, मालवे में भाबुआ के उत्तरी भाग और **पूर्व में मालवा** के सैलाना का घाँटा तथा रतलाम और प्रतापगढ़ के पश्चिमी भाग तक था।

इस समय बागड़ में डूँगरपुर और बाँसवाड़ा के जिलों की ही गणना की जाती है, परंतु बागड़ी बोली का दायरा इनके आसपास के सीमास्थ प्रदेशों तक आज भी व्यापक है। इस विस्तृत प्रदेश में इस समय लगभग १२ लाख से भी अधिक मनुष्य निवास करते हैं, जिनकी बोली बागड़ी तथा उससे प्रभावित मेवाड़ी, मालवी और गुजराती हैं।

नामकरण

बागड़ नाम का मूल क्या है, इसे खोजना यहाँ ठीक होगा। यह शब्द स्वरूप पर से संस्कृत नहीं दीखता है। इसका मूल संस्कृत हो भी सही, या न भी हो। प्राचीन शिला लेखों एवं ग्रन्थों में इस देश के लिये मिलते-जुलते विभिन्न शब्द मिलते हैं, जैसे कि प्रारंभ में दिये गये अनुसार—

	वि. सं.
१. वार्गटिका	(१०३०)
२. वागट	(१०५१)
३. वागड़	(१२४२) (१२६१) (१३०८) (१३४३) (१३५६) (१४०५) (१५२५) (१६४७)
३. वग्गड	(१३६०)
५. वागडा-खंडल	(१५२५)
६. वाग्वर	(१५७१)
७. वैयागड	(१५६३)

इन नामों के अलावा भी मूल शब्द के विषय में कोई कोई अभिप्राय व्यक्त हुआ है—जैसे कि, आचार्य जिन विजयजी ने "वाक्जड़" शब्द सूचित किया है और वागड़ की लोकोक्तियों में "वागोड़" शब्द का प्रयोग मिलता है।[२४]

---

२४. "के ग्याता ? वागोड़।
सूं खादु ? रावोड़।
सूं लाव्या ? वैरि-वाँगोड़।"

उपरि-निर्दिष्ट शब्दों में **"वार्गटिका"** और **"वागट"** ये "वागड़" शब्द के कृत्रिम संस्कृतिकरण हैं, जिनका कोई खास अर्थ नहीं होता है। जिनप्रभसूरि का विविध तीर्थकल्प में दिया हुआ, **"वग्गड"** शब्द वागड़ का प्राकृत रूपान्तर है, इससे भी कोई अर्थ विशेष प्राप्त नहीं होता है। "वागडाखंडल" में तो "वागड़" ही है। "वाग्वर" मुझे अर्थहीन कृत्रिम संस्कृतिकरण लगता है। "वैयागड" जो बहुत देर से प्राप्त होता है उसका भी कोई विशिष्ट अर्थ नहीं पाया जाता है। मुनिजी के **"वाक्जड़"** शब्द से कोई विशिष्ट अर्थ निकलता नहीं है। "वाणी से जड़" यह देश वाचक नाम होना संभव नहीं है। अतः **"वाग्वर"** जैसा ही यह भी कृत्रिम रूप है। **"वागोड़"** तो वागड़ का ही उच्चारण भेद लगता है।

अब हमारे सामने **"वागड"** शब्द ही शेष रहता है, जो प्राकृत **"वग्गड"** से भी पूर्व का है (१२४२)। स्वर्गीय गौरीशंकर हीराचन्द ओझाजी ने इस शब्द का संबंध "वगडो" (गुजराती) = जंगल शब्द से जोड़ा है। अर्थ की दृष्टि से हमें भी यह संगत लगता है; क्योंकि विशिष्ट प्रकार के वन्य प्रदेशों के लिये इस शब्द का प्रयोग असंभव नहीं है। यहां हमारे लिये यह भी खोजना जरूरी है कि "वागड़" के साथ साथ "वगडो" शब्द का भी मूल क्या है। क्या दोनों एक ही हैं? या किसी एक समान मूल में से आये हैं। यह ख्याल में रखने जैसी बात है कि "वगडो" शब्द प्रायः भीली प्रदेशों में प्रचलित ही है और उसके बाद गुजराती में भी प्रचलित होता रहा है। साहित्य के ग्रन्थों में उसका प्रयोग बहुत कम है। गुजराती "जोडणी कोश" में **"वगडो"** शब्द के मूल के लिये प्रा. विगड़ (विकट) शब्द दिया है। उवासगदसा, औपपातिक सूत्र और गउड़वहो में विशाल और विस्तीर्ण के अर्थ में "विज़ड़" (विकट) का प्रयोग हुआ है—(पाइअसद्द महण्णवो, पृष्ठ ९५२)। इस शब्द के लिये प्रा० विग्रड, विगड (सं० विवृत) खुला हुआ के अर्थ में स्थानांग सूत्र में प्रयुक्त हुआ है।—(पाइअसद्द... पृष्ठ ९५२–९६३) किन्तु इन दोनों मूलों से भी स्पष्ट मूल की प्रतीति नहीं होती है, इनसे "देश" की स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं होती है।

नेपाली भाषा में **"वगड़ा"** और **"वगर"** दो शब्द प्रयोग में हैं। वगड़ा शब्द का अर्थ एक खास प्रकार का चावल होता है—

(वगड़ा : A particular kind of coarse rice. (Ku—वगड़ a kind of Paddy; H. वगड़, वगड़ा, M. Rice roughly cleaned; P. वगड़, F. coarse grass, a kind of red rice; M वगड़ F. rice roughly cleaned). —Turner's Nepali Dictionary p, 414). और **वगर** का अर्थ रेतवाली जमीन, किनारा, रेतवाली खाड़ी ऐसा होता है—

(**वगर** : A sandy or shingly place; shore, sand-back, beach. (Ku. वगड़ River bank; G. वगड़ो M. Waste land), टर्नर ने नोंध की है कि

कुमायूंनि भाषा में वगड़ शब्द है और उसका अर्थ होता है नदी का किनारा। वहां उन्होंने गुजराती "वगड़ो" शब्द का निर्देश भी कर दिया है। मुझे वागड़ के साथ-साथ नेपाली "वगर", कुमायूंनि "वगड़" और गुजराती "वगडो" शब्द का वंशिक संबंध लगता है। वागड़ प्रदेश रेत और पत्थर का है, नदियों का भी है (समूचा वागड़ प्रदेश सुविख्यात माही नदी जो **मही सागर** कहलाती है, के दोनों किनारों पर स्थित है) अतः उसका कोई प्राचीन मूल हो न हो तो भी जंगली प्रदेश के लिये वागड़ प्रयुक्त हो सकता है। यहां कवि लावण्य समय ने अपने विमल प्रवंध में—"वेटउ वोलइ वागड वोल" (३–१५) कहा है, उसका रहस्य मिल जायेगा। वागड़ का अर्थ यहाँ जंगली, अविवेकी (तोछड़ुं) ऐसा स्पष्ट है।

इसी प्रकार वृहद् हिन्दी कोश के पृष्ठ ६४४ पर **वागर** (पु०) शब्द का अर्थ नदी के किनारे की जमीन जहाँ तक उसका पानी बाढ़ में भी पहुँचता हो; देते हुए **कबीर** की उक्ति का निर्देश करते हुए दूसरा अर्थ मरुभूमि दिया है—

(कबीर ने कहा है—"वागर देश लुअन का घर है") इसी वृहद् हिन्दी कोश के पृष्ठ ६४२ पर वागडू (स्त्री०) शब्द का अर्थ बाँगड़ देश की बोली। वि० मूर्ख, उजड्ड ऐसा दिया है। यहीं बाँगर–पु० ऊंची जमीन (वह जमीन जो बाढ़ में न डूबे) भी दिया है। हमारे इस वागड़ के लिये दोनों अर्थ घटित हो सकते हैं, क्योंकि वागड़ नदी के किनारे की ऊंची जमीन वाला तथा "पथरीला" होने से "लुअन का घर" भी है। यहाँ वागर शब्द भूमि विशेष का प्रतीक है। इसी शब्द कोश में पृष्ठ ६४२ पर **खादर**–पु० नीची जमीन, जहाँ बरसात का पानी इकट्ठा हो जाय, कछार भी दिया है। **वागड़** (Upper land) और **खादड़** (Lower land) की विशेपताओं को प्रकट करने वाली एक राजस्थानी लोक गीत की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

(१) "नित वरसो मेहा **वागड़** में
मोठ वाजरो वागड़ निपजै,
गेहूँड़ा निपजै खादड़ में,
नित वरसो मेहा वागड़ में।"

इस प्रकार गीत की अगली कड़ियों में किसान यह बताने का यत्न करता है कि वागड़ और खादड़ की और क्या-क्या विशेपताएँ हैं। वागड़ में ऊँट अच्छे होते हैं, खादड़ में बैल। वागड़ में भेड़ बकरियाँ अच्छी होती हैं और खादड़ मे भैंसे। (हिन्दी पाठावली तीसरी किताव) (पृष्ठ १०३–१०४)।

इसी तरह वागड़ की तथाकथित लाक्षणिकता के बारे में, इसी प्रदेश की कुछ और लोकोक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं :—

(२) खड़ ख़ांकड़ ने खेजड़ गणा
कासढ़ियाळो वेस ।
नपट नारि पियु लजामण
इ तो वंट्यो वागड़ देस ।।[२५]

(२) के ग्याता ?—वागौड़ ।
सु खादु ?—रावोड़ ।
सु लाव्या ? (वैरी) वांगोड़ ।[२६]

(४) वागड़े पँच रत्नानि पत्राणि च शिलोदकम् ।
चतुर्थं मधुप पुष्पंच पँचमं वस्त्र लुंचनम् ।।[२७]

(५) सोमाए रळियमणो, लागे वागड़ देस ।[२८]

---

२५. वागड़ में ढाक (खाँकरो) तथा खेजड़ के वृक्ष अधिक होते हैं, ये जंगली वृक्ष हैं, जगल में पथरीली, रेतीली पहाड़ी भूमि में ये अधिक उत्पन्न होते हैं। वागड़ पिछड़ा हुआ तथा निर्धन प्रदेश है और अधिकतर प्रजा आदिवासी है, अतः इन वागड़ वासियों की वेपभूपा अर्ध नग्न जैसी होती है। वे लोग कमर में सिर्फ काछटी (लंगोटी) मार कर खेती तथा जंगल में लकड़ी आदि काटने का काम करते हैं। वहाँ स्त्रियाँ भी पुरुषों की ही तरह उनके साथ साथ काछटी मार कर कार्य करती हैं, अतः उन्हें "नपट नारी" अर्थात् वेशर्म वेहया या लज्जाहीन कहा है। असंस्कृत होने से और मुहफाड़ वोलने के कारण वागड़ को "वँट्यो वागड देश" अर्थात् असभ्य प्रदेश कहा है।

२६. वागड़ के पहाड़ों की ढलवान भूमि पर मक्का की ही ऊपज अधिक होती है। छास और मक्का के आटे से "घे" (रावड़ी) वनाकर लोग पीते हैं। यह गरीवों का भोजन है। वागड़ में घर घर में "घे" (रावोड़) रोज ही राँधी जाती है, अतः रावोड़ वागड़ का प्रतीक जैसा है। अतः कहा जाता है कि वागड़ जाओगे ते रावोड़ ही पाओगे साथ ही वागड की स्त्रियाँ मेहनतकश (rough) और डीलडॉल तथा मोटी-ताजी होने से उन्हें अलमस्त वाँझ भैंस की तुलना दी गई है। इस प्रकार **"वागोड़-रावोड़-वांगोड़"** तीनों शब्द एक दूसरे के पूरक प्रतीक वन गये हैं।

२७. वागड़ में पानी, पत्ते और पत्थर तथा महुओं के फल (जिनसे शराव वनाई जाती है) वहुतायत से पाये जाते हैं, ये सव जंगल के प्रतीक हैं। चोरी लूट-फाँट यहाँ की पाँचवीं विशेपता है।

२८. वागड़ प्रदेश सिर्फ चौमासे में ही हरा भरा लगता है, शेप समय में उज्जड़, वेरान लगता है।

इसके अलावा वागड़ के लोकगीतों में भी वागड़ की लाक्षणिकता प्रकट करने वाली पंक्तियाँ मिलती हैं—

मुों तौं वारि ओ वागड़ि आदेस
यँ निपज्ँ रँ मकिय्ँ नो सोड़····

मुों तो वारि ओ वागड़िया देस
य्ँ निपज्ँ रँ राय-भोगणि-हाल नो सोड़····

मुों तो वारि ओ वागड़िआ देस
य्ँ निपजँ रँ मौड़ँ नु झाड़····[२६]

इन बातों से लगता है कि, जहाँ जहाँ वागड़ देश नाम है वहाँ वहाँ वह असंस्कृत देश विभाग के लिये आज रूढ़ है, चाहे वह कच्छ वागड़ हो, बीकानेर के पासवाला वागड़ हो या डूंगरपुर-बाँसवाड़ा वाला हमारा यह वागड़ हो। तीनों प्रदेश संस्कृति में पिछड़े हुए प्रदेश हैं और इन प्रजाओं द्वारा ही अपने प्रदेश के लिये दिये हुए नाम होना असंभव नहीं है। भीली असर वाले लोग हमेशा महा प्राण व्यंजनों के स्थान अनादि दशा में अल्प प्राण व्यंजनों का उच्चार करते हैं। इस शब्द के लिये यह जो सच्चा हो तो इसके पीछे "**वाघढ**" शब्द क्या नहीं हो सकता? इस "**वाघढ**" शब्द से सं. मूल प्राप्त करना कठिन नहीं है। जो वागड शब्द का मूल संस्कृत हो तो मुझे एक संभावना लगती है कि शायद इस शब्द के मूल में "**व्याघ्रपथः**" जैसा कोई

---

२६. वागड़ में मक्की की ऊपज अधिक होती है, इसी को खाकर लोग अपना जीवन निर्वाह करते हैं। मक्की रुखा-सूखा भोजन है। परंतु बरसात का पानी जहाँ जमा रहता है ऐसे नीचे वाले स्थलों (Lower land) में राय-भोगणी, कमोद जैसी साल–(गु० डाँगर) धान भी पकती है, जिसे अमीर लोग ही खा सकते हैं। महुओं की शराब के लिये वागड़ विख्यात है। महुओं के पेड़ों के जंगल के जंगल भरे पड़े हैं परन्तु अब दिन दिन कटते जा रहे हैं। मकाई और महुए तथा जंगली पेड़ एवं पत्थर यही वागड़ की प्रतीक या लाक्षणिक चीजें हैं। शिक्षा-दीक्षा सभ्यता एवं संस्कृति के अभाव में यह प्रदेश बहुत ही पिछड़ा हुआ एवं अशिष्ट है। ८०% आबादी यहाँ आदिवासियों की है। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय आदि शिष्ट प्रजाएँ २०% से भी कम हैं।

शब्द हो – बाघों का प्रदेश।[30] आज इन तीनों वागड़ प्रदेशों में बाघों की तादाद नहीं है। हमारे वागड़ में भी आज बाघों की तादाद नहींवत् है।[31] यदि यह सही हो तो सं. व्याघ्रपथ>प्रा. वग्घअढ>वग्घड>वाघड मिली में "वागड़" हो सकता है। और फिर वागड़ से "वगडो" शब्द का निकलना कोई असंभव नहीं है।

कुछ लोग वागड शब्द का अर्थ निम्न लेते हैं—

वा + गड = वागड़

वा = वायु और गड = गड

वा = वा का रोग; गड = गड़गुंबड़

१. वागड़ = जिसमें वा के गड़-गुंबड़ होते हैं;

२. वागड़ = वायु के कारण गड़गुंबड होते हैं;

३. वागड़ = वायु और धुल से जो भरा हुआ है।

परंतु शाब्दिक अर्थ से अधिक वागड़ का लाक्षणिक अर्थ सुसंगत लगता है। इसमें भूमि विषयक लाक्षणिकता के अलावा व्यक्ति संस्कार और वातावरण संबंधी लाक्षणिकता भी स्पष्ट एवं सुसंगत रीति से प्रकट होती है। महा कवि माघ को

---

३०. There are no wild animals peculiar to Rajputana. Lions must have been numerous about a hundred years ago, for Colonel Tod writes that Maharao Raja Bishansingh of Bundi, who died in 1821, had slain upwards of one hundred lions, with his own hand, besides many tigers. More over, five lions were shot in Rajputana as recently as 1872 : namely four near Jaswantpura in the South of Jodhpur, and a full-grown female on the western slope of Abu and these are believed to have been the last of their kind in Rajputana. There are still in a fair number of tigers, chiefly in the Aravli Hills and in parts of Alwar, Bundi. Jaipur, Karavli, Kotah, Sirohi, and Udaipur, while an occasional tiger is met with in every other state except Bikaner, Jaisalmer and Kishangarh —
—Imperial Gazetter of India Vol. XXI Physical Aspects, Page 91.

३१. "वागड़ में बाघ अब नहीं हैं। बाघ दो किस्म के होते हैं, एक शेर बबर (Lion) और दूसरा शेर असील (Tiger) दोनों को ही बाघ इस क्षेत्र में कहा जाता है। शेर बबर वागड़ क्षेत्र में सम्भवतः १०० वर्ष पूर्व और शेर असील सन् १९५० तक थे।"
—डूंगरपुर के महारावल श्री लक्ष्मणसिंह जी के ता० १२-६-६१ के पत्र से।

लेकर वागड़ से संबंधित एक जन-श्रुति है कि माघ ने जब पहली बार शिशुपालवध काव्य की रचना की तो कोई उसे समझ नहीं सका, अतः कवि से चार मास तक वागड़ में रह आने को कहा गया । चार माह कवि वागड़ में रह कर वापस आये और काव्य फिर से लिखा, फिर भी वह दूसरी बार का काव्य भी अगम्य रहा । अतः फिर से कवि को छः माह वागड़ में रह आने को कहा गया । अब काव्य कुछ सरल बना और पंडित तथा विद्वान उसको समझने लगे । तात्पर्य यह कि वागड़ की मक्की की रोटी और उड़द की दाल खाकर बुद्धि कुछ बोठी (blunt) या मोटी हो जाती है । इस कथन की सच्चाई किसी बुद्धिवादी के गले आज नहीं उतारी जा सकती, परंतु यह जनश्रुति व्याप्त अवश्य है, यही नहीं, वागड़ के लोगों को जब तुच्छ अथवा हीन बताने के लिये गाली भी देनी होती है तो उन्हें "वागड़िया" (rude, rustic, uncultured) की संज्ञा दी जाती है । यही नहीं, गुजराती लोकगीतों में बेटी को **वागड़** में व्याह न कराने की भावना भी व्यक्त की गई है ।

॥ "वागड़ माँ मा दीजो दादा दिकरी ॥"

'वागड़ नी वढियाळी सासु'.....यह कच्छ वागड़ के लिये है । मारवाड़ (रेगीस्तान) की तरह वागड़ में भी कहीं कहीं पानी बहुत गहरे तक भी नसीब नहीं होता माना जाता है ।

ओवरी ओ डेचाँ के लिये प्रसिद्ध है कि—

"ओवरी देसँ ना ओंडा खुवा, वेटि आलि तारे वाप (केम) नें मुवा"

डूंगरपुर के महारावल श्री लक्ष्मणसिंहजी मुझे अपने १२–६–६१ के पत्र में वागड़ विषयक लिखते हैं कि—"**वागड़** शब्द एक प्रदेश (लम्बा चौड़ा इलाका) सूचित करता है । गुजरात तथा कॉठियावाड कच्छ में भी वागड़ शब्द 'क्षेत्र' के लिये काम में लिया गया है वैसे तो वागड़ नाम ही है—जैसे मेवल, छप्पन, भोमट आदि—"

जहाँ तक संभव हुआ मैंने वागड़ शब्द के शाब्दिक तथा लाक्षणिक अर्थों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है, परंतु इस विषय में कोई अंतिम निर्णय नहीं पाया जाय वहाँ तक तो "वागड़" शब्द को कोई आर्येतर स्थानिक देश्य शब्द ही गिना जाय ।

वागड़ का समाज

वागड़ प्रदेश की प्राचीनतम प्रजा आदिवासी है । इस प्रदेश की जनसंख्या अनुमानतः दस-बारह लाख के है, जिसमें अस्सी प्रतिशत पिछड़ी एवं आदिवासियों की संख्या है ।

आदिवासी प्रजा को जीतकर पहले क्षत्रप-शक तथा बाद में मालव-परमारों ने अपना शासन स्थापित किया । बारहवीं शताब्दी के बाद मेवाड़ के गुहिल वंशियों

ने वागड़ पर अपना प्रभुत्व जमाया । इसी समय गुजरात के सोलंकियों का भी इस प्रदेश पर कब्जा था । इस प्रकार बारहवीं-तेरहवीं सदी तक वागड़ पर गुजरात के सोलंकियों, मालवा के परमारों तथा मेवाड़ के गुहिल वंशियों की पकड़ रही । फलतः स्थानीय लोगों में बाह्य प्रजाओं का संमिश्रण हुआ ।

इस प्रदेश में मेवाड़ से मेवाड़ा आदि ब्राह्मण तथा राजपूत, गुतरात से पटेल, सूरमा राठौड़ तथा औदिच्य आदि ब्राह्मण तथा हूमड़ लोग एक बड़ी संख्या में ईडर राज्य से आकर वागड़ में आबाद हुए । मालवा की ओर से भी राजपूतों आदि का आगमन हुआ । बाद की सदियों में मुसलमानों के आक्रमण के काल में मुसलमानों का भी प्रवाह आकर मिल गया । इस प्रकार वागड़ अब केवल आदिवासी प्रजावाला प्रदेश न रहकर पचरंगी प्रजावाला देश बन गया ।

आज के वागड़ में भील, मेंणे, गरासिये, पटेल, राजपूत, ब्राह्मण, महाजन (बनिये : जैन और वैष्णव), सुथार, सुनार, लोहार. सलाट, दर्जी, कुम्हार, कलाल, चमार, बलाई-वणकर, भंगी, माली, नाई (वेद-वाळंद), धोबी, बनजारे, गायरी, जोगी, कंजर, रबारी, चारण-भाट, कीर, भोई और भवाइये आदि हिन्दू जातियाँ तथा मुसलमानों में शेख, सैयद, मुगल, पठान, रंगरेज, सक्का (भिश्ती), घाँची और वोहरे आदि हैं, जिनके शादी-विवाह एवम् अन्य सामाजिक व्यवहार अपने अपने फ़िर्कों में होते हैं । अपने पेशेवर धन्धों के अलावा अधिकांश लोग पशु पालन, खेती एवम् नौकरी द्वारा अपना पेट पालते हैं ।

वागड़ की संस्कृति

वागड़ प्रदेश बहुत प्राचीन है, परन्तु मूल आदिवासी प्रजाओं की बहुसंख्या तथा शिक्षा एवं अन्य पडौसी क्षेत्रों से संपर्क की कमी के कारण तथा निरंकुश शासकों के शोषण के कारण जीवन-संघर्ष में ही रत रहने के कारण इस प्रदेश की प्रजा का आचार एवं संस्कृति अपेक्षाकृत स्थूल रहे दीखते हैं । धार्मिक देव मंदिरों के अलावा कला एवं कारीगरी विषयक सुरुचि एवं सौन्दर्य बोध वागड़ के जन-जीवन में दृष्टिगत नहीं होता है । शायद इसीलिये लोक-साहित्य में हृदय की सच्ची अनुभूतियाँ एवं उर्मियों की अभिव्यक्ति तो है, परन्तु उसमें सूक्ष्म एवं कलात्मक तथा साहित्यिक भावाभिव्यक्ति के बदले स्थूल एवं कठोर जीवन का उद्रेक नजर आता है । वागड़ में प्रचलित लोक-उक्तियाँ इन बातों का प्रमाण हैं—

(१) वागड़े पँच रत्नानि पत्राणि च शिलोदकम् ।
चतुर्थं मधुप-पुष्पं च पँचमं वस्त्र लुँचनम् ।।

(२) खड़ खाँकड़ ने खेजड़ गणा ने कासड़ियाळो वेस ।
नपट नारि पियु लजामण इतो बंट्यो वागड़ देस ।।

(३) के ग्याता ?…………वागोड़ ।
स̤ँ खादु ?…………रावोड़ ।
स̤ँ लाव्या ?…………वाँगोड़ ।

संक्षेप में वागड़ की संस्कृति सादी, स्वाभाविक एवं निराडम्बर पूर्ण है ।

वागड़ की बोली

इस प्रदेश की मातृ बोली अथवा मुख्य भाषा वागड़ी है ।

नोट :—निम्न प्रकार की जानकारी भी मिली है—

१. वागड़ या बागड़ = काँटों की बाड़ (fancing of chorns)
—(ठाकुर भैरवसिंहजी का पत्र ता० ६–८–५६)

२. वागड़ बैल = एक प्रकार की वेल या लता (a kind of creeper)
—(माखनलाल चतुर्वेदी की कविता में प्रयुक्त शब्द)
संभवत: काँटों की बाड़ पर यह वेल होती है अत: इसे "वागड़ बेल" कहा गया हो ।

३. वाँगड़ = वाँझ (unfurtile, विन उपजाऊ)
वाँगड़ से बागड-वागड :
यह प्रदेश कँकरीला-पथरीला, वन-पठार होने से लाक्षणिक अर्थ में

४. वागड़ = अनगड (अनाडी, असंस्कृत uncultured) Rough.
आज भी गुजरात में वागड़ के लोगों को वागड़िया कहते हैं । यह शब्द व्यंग्यार्थ में भी प्रयुक्त है । 'कहो, वागड़ महाराज !'

५. वागड़ = ऊंचाई वाली भूमि (upland) oppo. खादड़ (Lower land)

६ बाँगर, अवध क्षेत्र का एक भूखण्ड है ।

———

द्वितीय अध्याय

वागड़ी की ध्वनि प्रक्रिया :
(Phonology)

प्रातः स्मरणीय डो० भुल्व्लोक के इस मंतव्य को यहाँ तथ्य रूप में उल्लिखित करना चाहिए कि "सिंधुनदीच्या पूर्वेस असलेल्या आर्य भारतीय भाषांत जे परस्पर भेद आहेत ते मुख्यत्वे करून रूपभेदा मुळें झले आहेत। उलट पक्षीं उच्चारपद्धतींतील लक्षणां पैकी जीं अगदीं मूलभूत आहेत आणि जीं प्राकृता वरून जशींच्यां तशीं पुढें आलेलीं आहेत तींच जर विचारांत घ्यावयाचीं, तर ह्या भाषंत सर्वत्र उच्चार पद्धति अगदीं एक आहे हें स्पष्ट आहे। तथापि ह्यांपैकीं कोणत्याहि एका भाषेची उच्चार पद्धति स्वतंत्रपणें विचारांत घेतली तर तिच्यांत असंख्य विसंवाद आणि अनियम दिसून येतात। त्याचें कारण असें किह्या सर्व भाशांचा शब्द कोसांत बाहेर चे पुष्कल शब्द घुसले आहेत।" (मराठी भाषेचा विकास अनु० वा० गो० परांजपे, पृ० ५७)

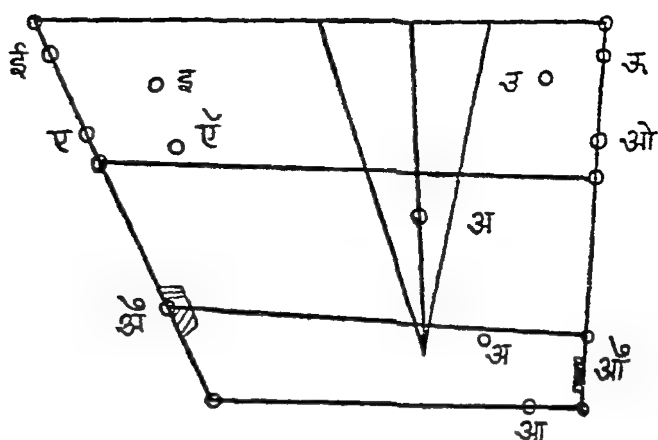
हम जब वागड़ी के विषय में विचार प्रस्तुत करते हैं तब इस तथ्य को पूर्ण रूप से अनुभूत करते हैं। वागड़ी की सारी ही उच्चार-प्रक्रिया भारत-आर्य दीख पड़ती है। हाँ, जरूर थोड़ा कुछ विशेष प्राप्त होता है जो कि मूल आदिवासी प्रजा का पारस्परिक अनुसरण है अथवा तो इस प्रदेश में आयी हुई अन्यान्य प्रजाओं के सम्पर्क का कारण हो।

हमारी वर्णमाला का मूल स्त्रोत तो प्राचीन-भारत-आर्य वर्णमाला से चला आता है। इस वर्णमाला में से निम्न ध्वनियों का हमें वागड़ी में आज श्रवण होता है।

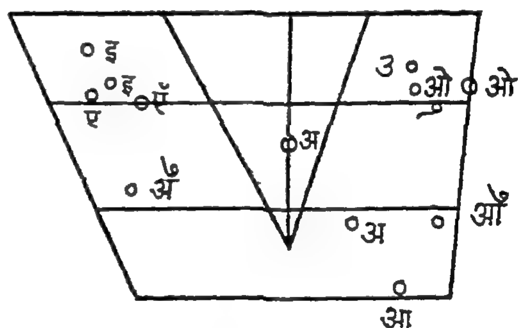
स्वर :—अ आ इ उ ए ऐ ओ औ अनुस्वार अनुनासिक

व्यंजन :—क ख ग घ ङ
ट ठ ड ड़ ढ ण
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल ळ व
स स़

३. गुजराती के स्वर—



४. बागड़ी के स्वर—



१. इ

मुख साधारण खुलता है, ओष्ठ (lips) साधारण चौड़े होते हैं, जीभ का अग्रभाग कठिन तालु के लगभग मध्य के आगे के भाग के नीचे आता है और ओठ साधारण रूप से खींचे जाते हैं। इसका स्वरूप ऊँचा, संकुल, अग्र, थोड़ा सा प्रयत्न साध्य और ह्रस्व। गि, पि, सि, वि, नदि, मकि, रित, जि़व, खिज़्, रिज़्, खिर, गिस, सिर, सिज़्, सिप, जित, टिड, ठिक, डिल, तिर, निस, निर, पिट, पित, पिप, पिर, विक, भिक, मिल, लिक, विर, सि़क, इर, अमि़र, गरिव, खसित इस 'इ' की विशेषता यह है कि यह हमेशा स्वराघात वाली है।

२. इ

मुख साधारण खुलता है, ओष्ठ भी साधारण चौड़े होते हैं, किन्तु जीभ का अग्रभाग ऊपर की प्रथम संख्या की 'इ' से जरा पीछे की ओर कुछ कम ऊँचे जाता है

और उसके उच्चारण में कोई परिश्रम नहीं दीख पड़ता है। इसका स्वरूप अग्र, विना खिचान वाला, कुछ नीचा: संकुल और कुछ पीछे-सा रहता ह्रस्व है—

इसाव, विवा, पिवा, दिवो, सि़वो, मिनँत, भिलँमु, भिकारि, पिताँळ यह 'इ कार' सामान्य रूप में स्वराघात हीन है।

सूचना—य़श्रुति वाले शब्दों में भी 'इ कार' स्वराघात हीन आता है—

काळियो़, भुरियो़, रातियो़, दरियो़, खाड़ियो़, वाणियो़, सा़ळियो़ इस 'इ कार' के उच्चारण में इतनी प्रवल संकुलता दीखती है कि मानो इ लगभग लुप्त हो गई हो।

३. ए

जीभ के अग्रभाग के पीछे का भाग टीले की तरह ऊँचा उठता है और कठिन तालु के सवसे ऊँचे भाग के नीचे उठा हुआ रहता है, ओष्ठ ठीक से खुले रहते हैं तथा गाल कान की ओर कुछ खींचे रहते हैं। मुंह में आगे का खालीपन पीछे के खालीपन से कम घननाप (volume) का होकर रहता है और जव ध्वनि पूरित होती है तव यह स्वर अभिव्यक्त होता है, इस स्वर का स्वरूप अग्र, आधा संकुल, ह्रस्व, अर्धोच्च-स्थानीय है।

टेको, ठेको, देको, मेलो, मेडो, तेड़ो, केड़ो, अेवो, केवो, यह 'ए कार' स्वराघात हीन है।

४. एँ

ऊपर के 'ए कार' से अधिक त्वरा में उच्चरित किया जाता है और संकुलता भी विशेष है। इसका स्वरूप अग्र, मध्य स्थान में से निकला हुआ कुछ पीछे जाने वाला, संकुल, ह्रस्व स्वर है जैसे कि—

देस, वेस, केस, तेर, देव, अेक, अेकवि, जे़टलु. केटलु अेटलु, यह स्वर हमेशा स्वराघात वाला है।

५. अँ

जीभ के पीछे के भाग का अग्र भाग उठकर ऊँचा होता है और वह कठिन तालु के पिछले भाग के लगभग, मध्यभाग के नीचे आ जाता है। मुँह काफी चौड़ा किया जाता है, इस वजह से ओष्ठ की संधियाँ निकट आती दिखती हैं। ऐसा होता रोकने के लिये गालों की मज्जाओं से इनको पीछे की ओर खींच कर चौड़ी स्थिति में रखनी पड़ती हैं। इस वजह से नं० ३ से इसमें श्रम का अनुभव ठीक ठीक अधिक होता है। दोनों ओष्ठ के खींचाव के कारण दोनों दंत मालाएँ न्यूनाधिक दीख पड़ती हैं। इस स्वर का स्वरूप अग्र, अर्ध चौड़ा, कुछ अधिक श्रमवाला, किन्तु ह्रस्व है।

जँ, वँ, कँ, खँ, रँ,
वँलु, पँलु, मँलु, सँलु, डँलु, गँलु,
आवँ, करँ, लावँ, पमाड़ँ, अलावँ,
यह 'अँ कार' हमेशा स्वराघात वाला होता है।

६. आ

मुख पूरा चौड़ा करना, ओष्ठ को बिना खींचे यथा स्थान रहने देना, जीभ का पिछला भाग लगभग मूल के नजदीक से थोड़ा ऊँचा होने देना, वह ऊँचाई मृदु तालु के नीचे, पीछे आ जानी चाहिए। इस वजह से मुख के दोनों पोपल असमान भाग में विभक्त हो जाते हैं, जिसमें आगे का भाग बहुत बड़ा लगता है। इस स्वर का स्वरूप–पीछे का, नीचे के स्थान का और सबसे चौड़ा—

खा, गा, सा, ज़ा, ना, पा, बा, वा,
खाय़, गाय़, जाय़, पार, वार, ज़रा,
खरा, अवा, नवा, अमारो, तमारो, अज़ार, वेपार,
वँवार, सुतार, वकार, समार,
यह स्वर हमेशा स्वराघात वाला है।

७. आँ

नं० ५ से मुख कुछ संकुल रखना, जीभ के पीछे का भाग लगभग मध्य स्थान में साधारण ऊँचा होने देना। नं० ६ से जीभ की ऊँचाई थोड़ी ज्यादा होती है और यह ऊँचाई कठिन एवं मृदु तालु की संधि के नीचे होती है। ओष्ठ का झुकान गोल होने की ओर कुछ रहता है और गाल कुछ उभरते हों यों लगता है, अगली पोपल वड़ी और पीछे की पोपल छोटी होती है।

इस स्वर का स्वरूप—पीछे का गोल ओष्ठ वाला, अर्ध नीचे के स्थान वाला, चौड़ा—

गाँळ, घाँळु, माँळु, वाँळु, आँळ, खाँळ साँळ, वराँळ, यह स्वर स्वराघात वाला है।

८. ओ

ओष्ठ को गोल करके नये पैसे जितना छिद्र रहने देना चाहिए। जीभ के पृष्ठ भाग के आगे का छोर (end) कठिन तालु के पीछे के भाग के नीचे उठने देना चाहिए। गालों के बीच हवा भर जाने से वे फुलते हुए से दीखते हैं।

इस स्वर का स्वरूप—अर्ध ऊँचे स्थान का, पीछे का, संकुल स्वर

ओगणि, ओसाड़, ओकरवु, यह स्वर प्रायः करके स्वराघात वाला है।

९. ओ़

ऊपर के स्वर से ठीक ठीक संकुल और अधिक आगे की ओर यह स्वर ह्रस्व

उच्चरित होता है । इसी कारण वह ह्रस्व 'उ कार' के वहुत नजदीक आ जाता हो ऐसा लगता है, तथापि इसका व्यक्तित्व स्पष्ट अलग है ।

सुोर, स़ुोर वुोर, रूोटलो, अुोटलो, वुोकड़ो, गुोटलो, रूोकड़ो

मैंने इस प्रकार को अन्य "ओ-आॅ" से अलग रखने के लिये "अुो" ऐसा संकेत स्वीकृत किया है ।

१०. उ

ओष्ठ को सँकरा करके नं० ७ से कम छेद रखकर जीभ के अग्र भाग के पीछे के छोर को तालु के खड्डु के ठीक पीछे के भाग के नीचे ऊँचा होने देना । ओष्ठ पर खास श्रम नहीं पड़ता है । जीभ उठी हुई होने पर भी उच्चारण में कोई श्रम नहीं ।

इस स्वर का स्वरूप—संकुल, उच्च स्थानीय, पीछे का, और ह्रस्व है—

उसिनु, उपणियु, उलाळो, उकाळो, उदेइ, उदास, उगमणु, उगलवु, उतँवॅळ, उटाड़वु, उदारँ, उतावऴु, वरू, सरू, अज़ुर, ज़रूड़, दुद,

यह स्वर स्वराघात वाला भी है और यथास्थान स्वराघात हीन भी होता है ।

वागड़ी में 'इ कार' के दो उच्चारण प्राप्त होते हैं, किन्तु 'उ कार' का तो सिर्फ एक और वह भी ह्रस्व रूप मिलता है ।

११. अ

मुख कुछ चौड़ा होता है, जीभ के मध्य विंदु का कुछ पिछला भाग जरासा ऊँचा होता है, किन्तु नं० ८ जितना नहीं । स्नायुओं को खीचने के वाद यह स्वर जोर से मुक्त होता है ।

इस स्वर का स्वरूप कुछ पीछे का, कुछ चौड़ाई वाला, और ह्रस्व है और हमेंशा स्वराघात वाला है—

बळ, कळ, सळ, रस, वाळक, सिरम, पॅरण, कागद, भादळिय़ु,

पॅज़णिय़ु, कसव,

करँ स़ँ, एणँने, एणँ थकि इस प्रकार के शब्दों में संपूर्ण अकार सुनाई देता है । मूल में वहाँ 'आ' ध्वनि है, किन्तु विशिष्ट प्रकार से स्वराघात वाला 'अ' उच्चरित है । वैशक वाँसवाडा के नागर ब्राह्मण शुद्धता के आग्रही होने के कारण कराँ साँ, एणाँने, एणाँ थकि वैसा उच्चारण करते मालूम हुए हैं ।

१२. अ

यह भी 'अ कार' है । इस के उच्चारण में मुख कुछ खुलता है, लेकिन इसमें न तो कुछ श्रम है और न अंगों का कोई वारिक हलन चलन ही । इसका उच्चारण संकुल एवं स्पष्ट ह्रस्व है । स्वराघातहीन होने के कारण यह स्वर ऊपर के 'अ कार' से स्पष्ट अलग व्यक्तित्व रखता है ।

ज़वाव, अमिर, अरज़, कमाॅळ, अरण,

सूचना—सामान्यतया स्वराघात के पूर्व का यह 'अ कार' स्वराघातहीन रहता है किन्तु स्वराघात वाले स्वरों के वाद भी एक प्रकार का 'अ कार' लेखन में प्रयुक्त होता है। इस अ कार का अस्तित्व ही नहीं है ऐसा मंतव्य आज विद्वानों में व्यापक है। वुंदेली का ख्याल देते हुए Mr. M. P. जायस्वाल कहते हैं कि जव शब्द के अंत भाग में और व्यंजन के साथ संयुक्त हो के 'अकार' आता है तव सामान्य नियम से अ कार शांत (silent) है। जैसे कि—रात, किताव; अर्थात् 'अ कार' अपना अस्तित्व रख सकता नहीं है।...कमरा, कितनों, जैसे शब्दों में लिखा जाता है तो भी उसका अस्तित्व नहीं है चतुःस्वरी शब्दों में जहाँ चारों स्वर 'अ कार' हैं वहाँ दूसरा और चौथा 'अ कार' उसके विना ही उच्चरित होते हैं—झट पट, मरवट, तर पट, (Lingu stic Study of Bundeli, Page 22)

यह परिस्थिति वागड़ी, गुजराती, हिन्दी, मराठी आदि नव्य-भारत-आर्य भाषाओं में प्रायः करके समान है। गूजरात के ख्यातनाम भाषा शास्त्री स्वर्गीय नरसिंहराव दिवेटिया ऐसे स्थानों में 'अ कार' को लघु प्रयत्न कहते हैं और स्थानीय विद्वानों में इस अभिप्राय का ज्यादा आदर है कारण वहुत स्पष्ट है कि गुजराती, वागड़ी, आदि भाषाएँ हिन्दी की तरह सवल स्वराघात से बोली नहीं जाती—अपितु मार्दव से वोली जाती हैं, इससे सर्वथा स्वरहीनता नहीं पाई जाती।

संयुक्त स्वर (Dipthongs)

आदिम भारत आर्य भाषा में 'ऐ" और "ओ" ऐसे संयुक्त स्वर थे कि उनके लिये लिपि में स्वतन्त्र संकेत आ गये थे, यों तो संस्कृत व्याकरण में 'ए" और 'ओ" को भी संयुक्त स्वर माने गये हैं। लेकिन आज इन दोनों स्वरों का स्वरूप संयुक्त स्वरात्मक उच्चरति नहीं होता है, जबकि "ए, औ" का उच्चारण अ+इ, अ+उ का स्पष्ट ख्याल देता है। इससे भी आगे वढ़कर हमारे वहाँ संयुक्त स्वरों की भर मार है। ये तीन प्रकारों में दीख पड़ते हैं :—

(अ) कितने ही स्थानों पर अंगभूत स्वरों में से प्रथम के स्वर के अंत में और पीछे के स्वर के आदि में विकृति होकर, दोनों का सुदृढ़ संयोग होता है और अखंड युग्म वन जाता है।

(व) कितने ही में दोनों स्वर कोई खास विकृति पाये विना पौर्वापर्य से रक्खे जाते हैं, और (क) ऊपर की दोनों स्थितियों में से मध्यवर्ती स्थिति में अंगभूत स्वरों का संयोग होता हैं इन तीनों को संज्ञाएँ दी जायँ तो (अ) सुदृढ़ युग्म, (व) शिथिल युग्म, और (क) अर्ध शिथिल युग्म, यों ठीक होगा।

(अ) **सुदृढ़ युग्म**—पूर्वांग प्रधान—

अइ—कै, गै, रै, सै़, सै,

अउ—वौ, सौ़, जौ़ँ, कौँ, रौँ,

आइ—भाइ, वाइ, अदेकाइ, लकाइ, नवाइ, सराइ,
लड़ाइ, पड़ाइ, जड़ाइ, सराइ, वळाइ, मलाइ ।

आउ—उडाउ, खाउ, सड़ाउ, वेसाउ, अलाउ,

उइ—जुइ, मुइ,

एइ—कँइ, वँइ, सँइ

ऑइ—कंदोइ, जूइ, लोइ, दोइ, खोइ,

(ब) शिथिल युग्म

अए—अरणँए, घोड़ँए, गदँड़ँए

ओए—जळोए,

(क) अर्ध शिथिल युग्म

यह तीसरा प्रकार वागडी में मुझे प्राप्त नहीं हुआ है।

स्वरों की सानुनासिकता

अनुस्वार

खास करके तत्सम शब्द वागड़ी में लिये जाते हैं तभी मात्र अनुस्वार का उपयोग दीख पड़ता है। जैसे कि—सन्द्रमा, कन्दोइ (कन्दोई), सम्पल (चप्पल गु०) सम्प (संप० गु०), रंग (संस्कृत) संग (संस्कृत), इन शब्दों में सच्चा उच्चार तो वर्गीय अनुनासिक व्यंजन है, किन्तु लेखन में अनुस्वार से भी काम लिया जाता है।

बाकी वागड़ी की लाक्षणिकता में अनुस्वार एवं वर्गीय अनुनासिक व्यंजनों की कोई खास जरूरत नहीं है। किन्तु सानुनासिक स्वरों का उपयोग काफी स्वरूप में होता है।

आभाआ के अनुस्वार और वर्गीय अनुनासिक के विकास में ह्रस्व स्वर के स्थान पर दीर्घ स्वर बनकर सानुनासिक उच्चारित बनने की प्रक्रिया नभाआ भाषाओं में स्थान पा चुकी थी, वही प्रक्रिया गुजराती में भी व्यापक बनी। वागड़ी में वही प्रक्रिया नितांत चालू रही और सैंकड़ों शब्द आज प्रचार में हैं। जैसे कि—

आँगणुँ	=	आँगन,
साँकड़ु	=	सँकरा,
साँगणु	=	(नजीक अर्थ)
आँति	=	हाथी
आँबळ	=	अंबा
काँटो	=	कँटक Thorn
साँटो	=	गन्ना Sugarcane गन्ना (गु० शेरडी) कख

वागड़ी में एक विशेषता प्राप्त होती है कि गुजराती और भीली में जहाँ सानुनासिकता है वैसे नपुंसक लिंग के सवल रूपों में निरनुनासिकता ही प्राप्त होती है। जैसे कि—

आँदळु	=	अन्धा
ओँसु	=	ऊँचा
ओँदु	=	उँधा-उलटा
कोँडु	=	कँडा

अनुस्वार-अनुनासिक का विचार

मभाआ में स्वरों को कंठ की ओर मृदु तालु को ऊँचा लेकर बोलने की विशेषता का आरम्भ हुआ जिसका परिणाम वंक (सं० वक्र) जैसे शब्दों में दीख पड़ता था। यह प्रवाह आगे भी चला है और वागड़ी में हम देखते हैं कि निम्न शब्दों में अनुस्वार के परिणाम से प्राप्त सानुनासिक स्वर स्थापित होते हैं। जैसे कि—

आँक	(गु० आंख	—	सं० अक्षित)
आँति	(गु० हाथी	—	सं० हस्ती)
ओँटवु	(गु० ओटवुं	—	सं० अपवृत्त)
ओँट	(गु० होठ	—	सं० ओष्ठ)
ओँट्	(गु० ऊँट	—	सं० उष्ट्र)
ओँसु	(गु० ओछुं	—	सं० अवच्छित)
आँउ	(गु० आँसु	—	सं० अश्रु–प्रा० अंसु)
पाँक	(गु० पांख	—	सं० पक्ष–प्रा० पंख)
ओँसु	(गु० ऊँचुं	—	सं० उच्छ)
खाँकरो	(गु० खाकरो	—	प्रा० दे० खंखर)
खाँडो	(गु० खाडो	—	प्रा० दे० खड्ड)
गुँजारु	(गु० गोझारुं	—	सं० गुह्यहर)
खुँवो	(गु० खोवो)		
कुँवो	(गु० कोवो)	–	एक प्रकार की खेत जमीन
बाँ	(गु० वांह	—	सं० वाहु)
साँडवु	(गु० छांडवुं	—	सं० छर्द्)

अनुस्वार का प्रक्षेप

निम्न शब्दों में अनुस्वार का प्रक्षेप होता है जिनमें स्वर दीर्घ हो तो ह्रस्व वनकर सानुस्वार वनता है—

पंताळ	—	(सं० पाताळ)
अंगास	—	(सं० आकाश)

रंताळ्ु	(गु० रताळु)	
नंगारु	(अ० नकारह)	
पंकेरु	(गु० पंखेरु) —	(सं० पक्षी)

अनुस्वार और अनुनासिक का लोप

निम्न शब्दों में उच्चारण के लाघव के कारण अनुस्वार किंवा अनुनासिक व्यंजन अथवा अनुनासिक जो भी हो उसका लोप होता है। जैसे कि—

अकस		—	सं० अंकुश
अणत		—	सं० अनंत
अदण	—	गु० आंधण	
अन		—	सं० अन्न
आसकि	—	गु० आँचकी	
इट	—	गु० ईंट	सं० इष्टिका
इटाळु	—	गु० ईंटाळो	सं० इष्टिका
कातवु	—	गु० काँतवुं	
गटि	—	गु० घंटी	
पपोळवु	—	गु० पंपाळवुं	
माज़्र	—	गु० मांजर,	सं० मंजरी
माज़रो	—	गु० मांज़रो,	सं० मांजार
मासड़ो	—	गु० मांचडो,	सं० मंच
मासि	—	गु० मांची,	सं० मंचिका
मोगु	—	गु० मोंघुं,	सं० महार्घ
रजाड़-ड़ो	—	गु० रंजाड	

महाप्राणित स्वर

"ह" का कोई खास अस्तित्व वागड़ी में नहीं हैं। इसका कोई उच्चारण स्पष्ट स्वरूप में नहीं मिलता है। गुजराती आदि में जहाँ शब्दारंभ में 'ह" है वहाँ उसी स्वर में बहुत ही स्वल्प स्वरूप में महाप्राण स्वर ही उच्चरित होता है, किन्तु ये ऐसे स्थान हैं कि जिनमें समान स्वरूप के दीखते शब्दों से पार्थक्य रखना जरूरी बना है। जैसे कि—

गु० हरख	वागड़ी अ़रक
गु० हाट	,, आ़ट
गु० होठ	,, अ़ोंट
गु० हाड	,, आ़ड

इस पार्थक्य को स्पष्ट करने के लिये मैंने यथा स्थान नुक्ते का स्वीकार किया है किन्तु ऐसे स्थान काफी कम हैं।

स्वराघात किंवा बलात्मक स्वर भार

आरोहावरोहात्मक (pitch) और बलात्मक (stress) स्वर भार (accent) आभाआ से लेकर अर्वाचीन मभाआ भाषाओं तक किसी न किसी प्रकार से उतर आए हैं। पश्चिम और पूर्व के विद्वानों ने इस विषय में काफी प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है, यह मीमांसा यहाँ देने का कोई अर्थ नहीं हैं, हम जब वागड़ी की बात करते हैं तब मुख्यतया शब्दगत स्वराघात के बलात्मक स्वरभार की क्या स्थिति है वह देख लेनी चाहिए।

इतना सही है कि हमारी भाषाओं और बोलियों में अंग्रेजी, जर्मनि आदि यूरोपीय भाषाओं में बलात्मक स्वर भार का जो प्रबल श्रवण होता है वैसा श्रवण नहीं होता है। वह मृदु भी है और एक ही शब्द में, वर्णों की वृद्धि के कारण, स्थानच्युत भी बनता है। प्रायः करके शांत (silent) 'अ कार' वाली श्रुति (syllable) के पूर्व की श्रुति पर एवं इसके पीछे की श्रुति हो तो पीछे की श्रुति पर भी, बलात्मक स्वरभार का आना वागड़ी में बहुत स्वाभाविक है—

गो़र, गु़रवट, दु़ख, बा़प, बा़पड़ो, पा़ट, पा़टलो, करना़र, करबु़,
भ़णबु, गा़म, गा़मथकि, गा़मनु, गा़ममें, कमा़ड़, तकलु़, सगवँड़, सु़रवड़,

स्थान परिवर्तन के उदाहरणों में जैसे कि—आळस में द्वितीय स्वर भार 'अ कार' के 'अ' में है जो आळसु में "सु" में चला जाता है। प्राथमिक स्वर भार तो "आ" में रहता ही है।

इसके नियम खोजे जायँ तो वागड़ी में यह परिस्थिति मालूम होती है :—

१. एक श्रुति वाले शब्दों में स्वर सर्वदा बलात्मक स्वरभार युक्त है—
सु़ों, अों, तु़ो, के, जे़, ये़, इ, उ, तो, जु़,

२. एक से ज्यादा श्रुति वाले शब्दों में संयुक्त व्यंजन के पूर्व का स्वर सदा बलात्मक स्वरभार युक्त है—

अद्दर, लुस्सो, गु़ोंस्सो, एवं अनुनासिक व्यंजनों वाले रंग, भंग संपल, कंदोई, जैसे शब्द।

इन सभी शब्दों में प्राथमिक स्वरभार इस नियम से स्पष्ट है और यथास्थान द्वैतीयिक स्वरभार भी अधिक श्रुति वाले शब्दों में व्यक्त है ही।

सावधानी

संयुक्त व्यंजनों में जबकि द्वितीय श्रुति में 'य श्रुति' दिखाई देती है और पहली श्रुति में अ इ उ आते हैं तब पूर्व की श्रुति पर भार आना जरूरी नहीं है। 'य श्रुति' वाला स्वर अपने पर भार उठा लेता है। जैसे कि—

कयुं, दिक्यु़, दुक्यु़,

प्रथम श्रुति में आ–ए–ओ स्वरों की उपस्थिति में तो 'य श्रुति' वाले स्वरों पर द्वैतीयिक स्वरभार ही आता है—

काड्य़, मान्य़, रान्य़, मेल्य़, बोल्य़, फ़ाल्य़, जे़ल्य़

३. अ

दो श्रुति वाले शब्दों में अंतिम श्रुति शांत (silent) अ वाली है अथवा तो खुले इ–उ वाली है, तब उपान्त्यस्वर पर ही भार आता है—

बात, खार, साड़, भुल, जाय, खाय, राड़, बाड़, बाड़, आड़, भाड़, मन, तन, धन, बस, नैम, बेत,

आ

द्वि श्रुति वाले शब्दों में यदि अंत में ए–ओ आते हैं और पूर्व की श्रुति में अ–इ–उ होते हैं तब अंतिम ए–ओ पर ही भार आता है—

करे, मरे, जि़ते, जि़वे, जु़वें, सु़वें, करो, मरो, जि़तो, जि़वो, सु़वो,

इ

कृत-तद्धित प्रत्यय जब लगते हैं तब ऊपर के दोनों नियम यथाश्रुतिनाप काम करते हैं—

करि, मरि, करतो, आवतो, बापड़ो, पाटलो, खाटलो, करनार, खानार,

४.

तीन श्रुति वाले शब्दों में प्राथमिक स्वर भार सामान्यतया आदि श्रुति में और द्वैतीयिक स्वर भार अंतिम श्रुति में रहता है—

कुतरु, दिकरो, सतरि

जबकि आदि श्रुति में अ–इ–उ होते हैं और द्वितीय श्रुति में आ–ए–ओ आते हैं तब द्वितीय श्रुति में ही भार निहित होता है।

दलासो, वलाड़ु, कुंवारु, गदेंड़ु, जनोई, विसार. इसाव,

समासान्त शब्दों में प्रत्येक शब्द को प्रायः अलग मानते हुए ही स्वर भार रक्खा जाता है। जैसे कि—

गुज़राति, बारवेंटियो

आरोहावरोहात्मक स्वर भार (Pitch accent) सर्वथा वाक्यगत है और अर्थानुसारी है—

सूचना—सभी बलात्म स्वर भार वाले शब्दों में आरोह आना ही चाहिए ऐसा नहीं है, किन्तु आरोह जहाँ आता है वहाँ तो अवश्य बलात्मक स्वरभार होता ही है।

हमारी स्वर संपत्ति

प्रारम्भ में ही बताया गया है कि हमारी मुख्य संपत्ति आभाआ भूमिका से

प्राप्त हुई है । वागड़ी तक आए हुए शब्दों में प्राचीन स्वर अविकृत भी मिले हैं, एवं भिन्न-भिन्न स्वरों में से परिवर्तित होकर भी आये हैं—

१. अ का विकास—आभाआ और मभाआ से

अ = अ

उदा० अक्ष्वाटक	=	अकाड़ो	(गु० अखाडो)
कठिन	=	कटँण	(गु० कठण)
करक	=	कड़ा	(गु० करा)
गर्दभ	=	गदँडु	(गु० गधेडुं)

आ = अ

आक्रम	=	अकमो	(गु० आकरमण)
आघाट	=	अगाट	(गु० अघाट)
अज्ञात	=	अजण्यु	(गु० अजाण्युं)
आचमन	=	असमन	(गु० आचमन)
आश्चर्य	=	असरत	(गु० अचरज)
आषाढ़	=	असाड	(गु० असाड़)
प्रमाण	=	परमणे	(गु० प्रमाणे)
भ्रातृ-भ्राता	=	भबो	(गु० भाभो)
भगवान्	=	भगवन	(गु० भगवान)
भावार्थ	=	भवारत	(गु० भावार्थ)
आराम	=	आरम	(गु० आराम)
एकान्तर	=	एकतरेँ	(गु० अेकांतरे)

सूचना—अरवी-फारसी और समान गुजराती शब्दों से वैकासिक संवंध वाले शब्दों में भी यह प्रक्रिया दीख पड़ती है—

गु० अथाणुं	=	अतणु,	गु० आंधण	=	अदँण
गु० आभड़छेट	=	अवड़सँट,	गु० पलाँण	=	पलण
गु० उतरामणि	=	उतरमणि	गु० वधामणी	=	वदमणि

(गु० आमण प्रत्यय यों अमण के रूप में मिलता है)

अरवी-फारसी

हरामी	=	अरॅमि	(अरमखोर, अरमजादि)
आसमान	=	असमन	(गु० आसमान)
मैदान	=	मँदन	(गु० मेदान)
आसामी	=	असॅमि	(गु० आसामी)
ईनाम	=	एलम	(गु० ईनाम)
लगाम	=	लगम	(गु० लगाम)

यहाँ उच्चारण लाघव काम कर रहा है, किन्तु यहाँ 'आ' का जो 'अ' हुआ है वह पूर्णरूप में बोला जाता है।

आभाआ के अकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के अन्त्य 'आकार' का 'अ' होना वागड़ी में भी सामान्य है। जैसेकि—

खट्वा	=	खाट	(गु० खाट)
जिह्वा	=	जिव	(गु० जीभ)
संज्ञा	=	सान	(गु० सान)
संध्या	=	साँज्	(गु० साँझ)
लाक्षा	=	लाक	(गु० लाख)
लिक्षा	=	लिक	(गु० लीख)

यहाँ सर्वत्र अन्त्य 'अकार' शांत कोटि का है।

इ = अ

विभूति	=	भवुत	(गु० भभूत)
मिलति	=	मलँ	(गु० मळे)
लिखति	=	लकँ	(गु० लखे)
कठिन	=	कठण	(गु० कठण)
हरिण	=	अरण	(गु० हरण)
पिण्ड	=	पंड	(गु० पंड)
हरिद्रा	=	अळदर	(गु० हळदर)
विनय	=	वनो	(गु० वनो)
परीक्षा	=	परक	(गु० परख)
परीक्षते	=	नरकँ	(गु० नीरखे)
एकलिंग	=	एकलंग	(गु० एकलिंग)

अरबी फारसी के शब्दों में भी यह दीख पड़ता है—

इतवार	=	अतवार	(गु० इतवार)
इन्साफ	=	अन्साप	(गु० इन्साफ)
इतल्ला	=	अरतला	(गु० —)
ईशारह	=	असारो	(गु० ईसारो)
हाकिम	=	आकम	(गु० हाकेम)

आनाआ के अन्त्य इ—ई का अ होना वागड़ी में बहुत सामान्य है—

अक्षि	=	आँक	(गु० आंख)
गति	=	गत	(गु० गत)
वैरिणी	=	वँरण	(गु० वेरण)
चतुर्थी	=	सोत	(गु० चौथ)
अर्चिस्	=	आँस	(गु० आंच)

उ—अ

क्षुरक	=	सरो	(गु० छरो)
गुहा	=	गपा	(गु० गुफा)
खुरा	=	खरि	(गु० खरी)
पुनर्	=	पण	(गु० पण)
सुपुत्र	=	सपुत	(गु० सपूत)
कुटुम्ब	=	कटम	(गु० कुटुम्ब)
गुप्त	=	गपत	(गु० गुप्त)
लुप्त	=	लपत	(गु० लुप्त)
फाल्गुन	=	फागण	(गु० फागण)
मानुष	=	मनक	(गु० माणस)
लशुन	=	लसण	(गु० लसण)
अंगुलि	=	आँगळि	(गु० आंगळी)
उन्दुरु	=	ओँदरु	(गु० उंदर)
लकुटकम्	=	लाकड़ु	(गु० लाकडुं)
कुक्कुट	=	कुकड़ो	(गु० कूकडो)

अन्त्य 'उ कार' का अ

चञ्चु	=	सांस	(गु० चांच)
विद्युत	=	विजळि	(गु० वीजली)
मधु	=	मोद	(गु० मध)

अपभ्रंश प्रथमा द्वितीया के 'उ' प्रत्यय का लोप अर्वाचीन मारवाड़ी, गुजराती आदि की तरह वागड़ी में भी सामान्य है।

ऋ = अ

ऋण	=	रण	(गु० रण)
मृत	=	मड़ु	(गु० मडुं)
पृथक (=पहुअ)	=	पौंआ	(गु० पौंआ)
तृण	=	तकलु	(गु० तणखलु)

ए = अ

एरण्ड	=	अरंडो	(गु० एरंडो)
अंग्रेजी कैंडल	=	कंडिल	(गु०)

ओ = अ

आभाआ का कोई शब्द लक्ष्य में नहीं आया है, किन्तु निम्न गुजराती शब्दों के समान शब्द मिलते हैं—

अटकोर	—	गु० ओडकार
अड़तलो	—	गु० हडदोलो
रको	—	गु० रोक

२. आ का विकास

आ = आ

जानाति	=	जाणँ	(गु० जाणे)
नाश	=	नास	(गु० नाश)
भ्राता	=	भाइ	(गु० भाई)
मारयति	=	मारँ	(गु० मारे)
कार्पास	=	कपा	(गु० कपास)
प्रक्षालयति	=	पकाळँ	(गु० पखाळे)
नापित	=	नावि	(गु० नाई)
राज्ञी	=	राणि	(गु० राणी)

अ = आ

अद्य	=	आज़ँ	(गु० आज)
कर्म	=	काम	(गु० काम)
चक्र	=	साकड़ो	(गु० चाकडो)
कर्ण	=	कान	(गु० कान)
हस्त	=	आत	(गु० हाथ)

ऐसा भी हुआ है कि मूल में संयुक्त व्यंजन के पूर्व का 'आ' मभाआ में "अ" बना हो उसमें से भी आखिर में आ निपपन्न हुआ है। ऊपर "राणि" दिया है,

मार्गयति	=	मग्गइ	=	मागँ

ऋ = आ

नृत्य	=	नास	(गु० नाच)
शृंखला	=	साँकँल	(गु० सांकळ)

यहाँ भी मभाआ में मध्यवर्ती 'अ' है और संयुक्त व्यंजनों के लोप के कारण दीर्घत्व प्राप्त करता है।

३. इ का विकास

वागड़ी में दीर्घ 'ई कार' उच्चारण हमें नहीं मिलता है।

इ = इ

तिलक	=	टिलु	(गु० टीलुं)
विद्युत्	=	विज़ळि	(गु० वीजळी)
भिक्षा	=	भिक	(गु० भीख)

शिक्षा	=	सि़क	(गु० सीख)
जिह्वा	=	जि़ब	(गु० जीभ)
लिक्षा	=	लिक	(गु० लीक)

ई = इ

शीतकाल	=	सि़याळो	(गु० शियाळो)
क्षीर	=	खिर	(गु० खीर)
दीप	=	दिवो	(गु० दीवो)
कीट	=	कि़ड़ो	(गु० कीडो)
जीर	=	जि़रु	(गु० जीरुं)
तीक्ष्ण	=	तिकु	(गु० तीखुं)

ऋ = इ

घृत	=	गि़	(गु० घी)

ए = इ

आभाआ और मभाआ में से कोई विकार मिला नहीं है, किन्तु अर्वाचीन उधार लिये हुए शब्दों—"फजेतो", "महेनत" जैसे शब्दों का उच्चारण "फसितो, मिनँत" होता है।

४. उ का विकास

उ = उ

उज्जवल	=	उज़ळु	(गु० ऊजळुं)
फुल्ल	=	फुल	(गु० फूल)
दुग्ध	=	दुद	(गु० दूध)
शुष्क	=	स़ुकु	(गु० सूकुं)
सुपुत्र	=	स़पुत	(गु० सपूत)

ऊ = उ

धूलि	=	धुळो	(गु० धूळ)
यूका	=	ज़ु	(गु० जू)
कर्पूर	=	कपुर	(गु० कपूर)
मंजूषा	=	मज़ु	(गु० मञ्जूस)
रूप	=	रुड़ु,रुपाळु	(गु० रुपाळुं)
ऊर्ध्व	=	उबु	(गु० उभुं)
कूर्च	=	कुसो	(गु० कूचो)
द्यूतोद्गार	=	ज़ुगार	(गु० जुगार)
सूत्रधार	=	स़ुतार	(गु० सुतार, सुथार)
धूर्त	=	धुतारो	(गु० धुतारो)

ऋ = उ

मृत	=	मुवो	(गु० मूवो)
पृष्ठ	=	पुट	(गु० पूंठ)
पृच्छति	=	पुसँ	(गु० पूछे)

५. ए का विकास

ए = ए

मेघ	=	मे	(गु० मे)
छेद	=	सेड़ो	(गु० छेडो)
देश	=	देस	(गु० देश)
क्षेत्र	=	खेतर	(गु० खेतर)
ज्येष्ठ	=	ज़ेट	(गु० जेठ)
श्रेष्ठी	=	स़ेट	(गु० शेठ)

अ = ए

शय्या	=	सँज़	(गु० सेज)
वल्ली	=	वेल	(गु० वेल)

आ = ए

वालुका	=	वेळ ु	(गु० वेळ ु)

इ = ए

खास करके उधार लिये हुए शब्दों में यह मिलता है—

इन्कार	=	एंकार	(गु० इनकार)
इकवाल	=	अकवाल, एकवाल	(गु० इकवाल)
इमान	=	एमन	(गु० ईमान)
इनाम	=	एलम	(गु० ईनाम)
हिम्मत	=	एमत	(गु० हिम्मत)

उ = ए

उष्णकालिक	=	एनाल ु	(गु० उनाळ ु)

ऐ = ए

गैरिक	=	गेरु	(गु० गेरु)
तैल	=	तेल	(गु० तेल)
कैलास	=	कैंलास	(गु० कैलाश)

६. ओ का विकास

ओ = ओ

एकोनविंशति	=	ओगणि	(गु० ओगणीश)

उ = ओ

उत्सव	=	ओसव	(गु० ओच्छव)
कुद्दाल	=	कोदाळो	(गु० कोदाळो)
कुष्ठ	=	कोड	(गु० कोढ)
गुरु	=	गोर	(गु० गोर)
उत्तर	=	ओतर, ओतरादु	(गु० उतरादुं)

अ = ओ

उत्तर	=	उतोर	(गु० उत्तर)
कर्दम	=	कादोव	(गु० कादव)
कमल	=	कमोळ	(गु० कमळ)
भव	=	भोव	(गु० भव)
दव	=	दोव	(गु० दव)
मद्य	=	मोद	(गु० मद्य)
यव	=	जोव	(गु० जव)

आ = आँ

पादाग्र	=	पाँग

ऋ = ओ (अ द्वारा)

गृह (= घर)	=	गोर

विकास की दृष्टि से ह्रस्व 'अ', ह्रस्व 'इ' और ह्रस्व 'ए' के दो दो प्रकार कंठ में पार्थक्य से मिलते है तो भी विकास में तो एक ही परम्परा है, वह ऊपर दिये गये उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है। यों बारह स्वरों में से वागड़ी के अपने तीन स्वर बाकी रहते हैं, जिनका विकास निम्न प्रकार से मिला है—

१. चौड़ा अॅ

इस प्रकार का चौड़ा स्वर वागड़ी एवं गुजराती आदि भाषाओं में मभाआ की भूमिकाओं में निश्चित स्वरूप बनने के बाद ही आकार पाकर अस्तित्व मे आया है। जैसे कि—

सं० प्रविशति—प्रा० पइसइ—अप० पइसइ वाग० पॅसॅ (गुज० उच्चरित रूप पॅसॅ)। यहाँ देखने पर पता लगेगा कि मध्यवर्ती स्वरूप में "अइ" का होना आवश्यक बना है। तुलना के लिये यहाँ भविष्यत् काल का रूप लिया जाय—

सं० करिष्यामि—प्रा० करिस्यामि—अप० करिस्सउँ—पश्चिमी राजस्थानी —करीसि, करेसि—वागड़ी करे (गुज० करीश)। यहां उच्चारण सिर्फ ह्रस्व 'एकारान्त' है। जबकि करइ द्वारा वर्त. करॅ है।

सं०	प्रा०	अप०	—	वा०	गु०
उपविशति	वइसइ	वइसइ		वँस्	वँसँ
ग्रथिल्लकम्	गहिल्लअं	गहिल्लउँ	गँलु		घँलुं
गभीरकम्	गहीरअं	गहिरउं		गँरु	घँरु

इस प्रकार से प्राप्त हुआ 'ए कार' जब सानुनासिक होता है तब उच्चारण चौड़ा नहीं होता है। जैसे कि वर्तमान बहुवचन के रूपों में—

पँसे, वँसे, करें, भरें, मरें

यहाँ पूर्व की श्रुति में चौड़ा 'एकार' नहीं रह सकता है, और संविस्वरात्मक 'ए' उच्चारण होता है।

यह वैपम्य तृतीया विभक्ति के सार्वनामिक एकवचन और बहुवचन के रूपों में भी स्पष्ट है। जैसे कि—

एकवचन	बहुवचन
एणँ	एणे

यहाँ अनुनासिकता 'एकार' की चौड़ाई को दूर करती है, इस वजह से सार्वनामिक "में" रूप में चौड़ाई नहीं है और इसका सादृश्यात्मक (analogy) से निरनुनासिक द्वितीय पुरुष के सर्वनाम "ते" रूप में भी चौड़ाई नहीं है।

२. चौड़ा आॅ

वागड़ी में जिह्वा मूलीय 'ळ' के पूर्व में आया हुआ 'आॅ कार' चौड़ा उच्चरित होता है जैसे कि—गाॅळ, पाॅळु, माॅळु, काॅळ, काॅळियो

गुजराती आदि भाषाओं में "अउ" द्वारा चौड़े आॅकार का आगमन हुआ है वैसी परिस्थिति वागड़ी में मुझे मालूम नहीं होती है।

३. मध्यवर्ती ओ

यह उच्चारण वागड़ी में विशिष्ट रूप से है। यहाँ नीचे दिये हुए त्रिविध रूपों से इसका तारतम्य ध्यान में आजाएगा—

१	कुरि	=	एक प्रकार का अनाज
	कुोरि	=	ताजी, Fresh unused
	कोरि	=	टेढी मेढी, Oblique; कठिन
२	कुट	=	मंगार
	कुोट	=	दीवाल Wall
	कोट	=	एक जात का सर्प
३	गुडि	=	घुटनि
	गुोड़ि	=	घोड़ी Mare
	गोड़ि	=	वृद्ध स्त्री

४ सुरि	=	चूरी
सुोरि	=	लड़की
सोरि	=	मिट्टी की एक प्रकार की मंजूषा
५ गरु	=	गुरु
गरुो	=	गरो (हरिजनों के ब्राह्मण)
गरो	=	ग्रह (आकाशीय पदार्थ), Stars.
६ कुटि	=	पीटाई की
कुोटि	=	कोठी
कोटि	=	कठिन
७ सुर	=	चूरा
सुोर	=	चोर
सोर	=	टुकड़े

अहं	—	ओं	(गु० हुँ)
त्वं	—	तुो	(गु० तुं)
क:पुन	—	कुोंण	(गु० कोण)
जन	—	झुोंण	(गु० जण)
मान	—	मुोंण	(गु० मण)
अधुना	—	अुोंण	(गु० ओण)
योग्य	—	जुोगु	(गु० जोगुं)
महत्	—	मुोट्ठु	(गु० मोटुं)
ओष्ठ	—	अुोंट	(गु० होठ)
उष्ट	—	अुोंट	(गु० उट),
अरघट्ट	—	रुोंट	(गु० रहेंट)
शुण्ठी	—	सुोंट	(गु० सूंठ)
वृक्ष	—	रुोकड़ु	(गु० रुखडो)
कोट्टपाल	—	कुोटवाळ	(गु० कोटवाळ)
मुख	—	मुोड्ढु	(गु० मोढुं)
भगिनी	—	वुोन	(गु० वहेन)
रोप	—	रुोप	(गु० रोप)

वागड़ी में तीन प्रकार के 'ओ कार' दीखते हैं। इनमें पार्थक्य वताने वाला सिद्धांत स्थापित करना प्रमाण में कठिन है, तो भी भेद-रेखा वताने के लिये अन्दाज लगाया जाय तो—

(१) वागड़ी का मुख्य ओकार तो यहां वताया गया "अुो" है, जिसमें उच्चारण प्रयत्न में कम श्रम हो—

आँगळि, पाँसमु, काकडि, आँगणु, कावरु, दुवळु, आँजणि, बामणि, उजागरो
संधियों के विषय में आगे लिखते समय कुछ विशेष भी दिया है।

३. अन्त्य स्वर का लोप

स्वराघात वाले स्वर के पीछे का 'अ कार' शांत (silent) जैसा दीख पड़ता है, वह भी उच्चारण-लाघव का कारण होना स्वाभाविक है।

घोर, कमाँळ, काजळ, गागँर, काकण, पापोड़, जालँर, वँरण, अ़रण,
मगसर, तेतर, परकवु,

संप्रसारण

यह संकोच का ही एक प्रकार है, किन्तु इसमें य् व् दोनों अर्धस्वरों के समान स्थानीय स्वर बनकर पूर्व स्वर से संधियुक्त बनते है। वागड़ी में भी यह परम्परा आई है—

य्

नयन	—	नेंण	(गु० नेण)
कथयति	—	कँ	(गु० कहे)

व्

कवल	—	काँळियो	(गु० कोळियो)
भवति	—	ओवँ	(गु० होय)
अवच्छित	—	ओंसु	(गु० ओछु)
अपसरति	—	ओरँ ओसरँ	(गु० ओसरे)
क्षपयति	—	खोवँ	(गु० खुए)
अपवृत्ति	—	ओट	(गु० ओट)
अपगलति	—	ओगळँ	(गु० ओगळे)
कः पुनः	—	कोंण	(गु० कोण)
कसपट्टीका	—	कसोटि	(गु० कसोटी)

(ऊपर के पाँच शब्दों में प् का प्राकृत में व् होकर संप्रसारण हुआ है)

समर्घ	—	सोंगु	(गु० सोंघु)
समर्पयति	—	सोंपँ	(गु० सोंपे)

इन दोनों शब्दों में म् का वँ होने के बाद संप्रसारण हुआ है।

स्वर प्रक्षेप

वागड़ी में कभी आदि में तो कभी मध्य में 'अकार' का प्रक्षेप होता है। जैसे कि—

आदि में

स्त्री	—	असतरि	(गु० स्त्री)
स्नान	—	असनन	(गु० स्नान)

प्रायः ह्रस्वता होती है और अनुस्वार के स्थान पर अनुनासिक उच्चारण स्थापित होता है। जहाँ तक स्वराघात अन्त्य स्वर पर है, वहाँ तक तो दूसरे स्वर बच जाते हैं, किन्तु उपान्त्य स्वर पर जाने से अन्त्य स्वरों के स्थान पर 'अकार' आ जाता है।

गुजराती वागड़ी आदि भाषाओं तक आते आते वह 'अकार' शांत (silent) कोटि का सुनाई देता है।

अ

सं०	प्रा०	अपभ्रंश	वागड़ी	गुज०
कर्णः	कन्नो	कन्नु	कान	कान
हस्तः	हत्थो	हत्थु	आत	हाथ
प्रस्तरः	पत्थरो	पत्थरु	पत्तर/पाणो	पत्थर
सूत्रधारः	सुत्तआरो	सुत्तआरु	सुतार	सुथार
दन्तः	दंतो	दंतु	दांत	दांत
पर्णम्	पन्नं	पन्नु	पान	पान
खट्वा	खट्टा	खट्ट	खाट	खाट
जिह्वा	जिब्भा	जिब्भ	जिव	जीभ
संज्ञा	सन्ना	सन्न	सान	सान
चतुर्थी	चउत्थी	चउत्थि	सोत	चौथ
अर्चिः	अच्ची	अच्चि	आँस	आंच
अक्षिः	अक्खी	अक्खि	आँक	आंख
विद्युत	विज्जू	विज्जु	विज/विजळि	वीज
धेनुः	धेणू	धेणु	धेण	धेण
मधु	—	—	मोद	मध

आ

'उ'-कारान्त और 'ओ'-कारान्त नामों के बहुवचन में 'आकार' होता है। वागड़ी में स्वतन्त्र 'आकारान्त' शब्द नहीं हो सकते हैं। तत्सम स्त्रीलिंग अकारान्त शब्दों का उधार स्वरूप में मात्र प्रयोग है।

इ

आभाआ में प्रायः करके अन्त्य स्वर पर स्वराघात रखने के लिये क प्रत्यय प्रविष्ट होता था। इसके विकास में हमें इकारान्त शब्दों की प्राप्ति हुई है।

सं०	प्रा०	अप०	वाग०	गु-ज०
धनिकः	धणिओ	धणिउ	धणि	धणी
प्रातिवेशिकः	पाडिउसिओ	पाडिउसिउ	पाड्ोइ	पाडोशी
राज्ञिका	रण्णिआ	रण्णिअ	राणि	राणी
गर्भिणिका	गब्भिणिआ	गविभणिअ	गामणि	गामणी

तुम्बिका	तुम्बिडिआ	तुम्बिडिअ	तुंवड़ि	तूमडी
मौक्तिकम्	मोत्तिअं	मोत्तिउ	मुोति	मोती
घृतम्	घिअं	घिउ	गि़	घी
यज्ञोपवीतम्	जन्नोअईअं	जन्नोअईउ	ज़नुोइ	जनोई

यहाँ स्पष्ट मालूम होता है कि अन्त्य दो स्वरों का पूर्व-वर्ण साद्दश्य होता है और स्वराघात अन्त्य स्वर पर भी स्थिर होता है।

उ

पुल्लिग एवं नपुंसकलिंग

उकारान्त शब्दों का वागड़ी में प्रयोग मिलता है जैसे कि—

पुंल्लिग—स्त्रीलिंग

सं०	प्रा०	अप०	वाग०	गुज०
*कालक:	*कालओ	*कालउ	काळु	काळु
—	बाप्पओ	वप्पउ	बापु	बापु
यूका	जूआ	जूअ	ज़ु	ज़ु
श्वश्रूका	सस्सआ	सस्सूअ	साउ	सासु
वालुका	वालुआ	वालुअ	वेळु	वेळु

इस प्रकार से अमु, गमु, वजु, पबु आदि नाम और स्त्रीलिंग में भी सज़ु, पारु, ज़सु जैसे नाम व्यापक हैं।

नपुंसकलिंग

सभी सबल अंगों में गुजराती में जहाँ सानुनासिक 'उँ' उतर आया है वहाँ सर्वत्र वागड़ी में निरनुनासिकता है। एक से अधिक स्वरों वाले शब्दों में द्वैतीयिक स्वराघात इस अन्त्य स्वर पर आता है।

सं०	प्रा०	अप०	वाग०	गु०
पर्णकम्	पन्नअं	पन्नउ	पानु	पानुं
रक्तकम्	रत्तअं	रत्तउ	रातु	रातुं
सौवर्णकम्	सोअन्नअं	सोअन्नउं	सुोनु	सोनुं
उर्ध्वकम्	उब्भअं	उब्भउं	उबु	ऊभुं

ए

एकारान्त शब्द बहुत कम मिलते हैं और वे भी एक स्वरीय उच्चरित होते हैं—

मघ:	मेहो	मेहु	मे	मे
चिता	चिआ	चिअ	सँ	चे
क्षिति	खिई	खिइ	खँ	खे

क्षयः	—	—	खँ	खे
श्रेयः	सेग्रं	सेउ	से	—
वेद्यः	वेहो	वेहु	वे	वे
मशी	मसी	मसि	मँ	मेश
वेशः	वेसो	वेसु	वे	वेश
जयः	जग्रो	जउ	ज़ँ	जे
द्वे	बे	बे	बँ	वे
भयं	भग्रं	भउ	मँ	भे
महिषी	—	—	भेँ	भेंस

ग्रो

ग्रोकार पुंल्लिगवाची है, और प्रथमा एक वचन का वाचक ही रहता है। जैसे कि—

हस्तकः	हत्थग्रो	हत्थउ	ग्रातो	हाथो
कर्णकः	कन्नग्रो	कन्नउ	कानो	कानो
दन्तकः	दंतग्रो	दंतउ	दाँतो	दाँतो
वंशक	वंसडग्रो	वंसडउ	वाँड़ो	वांसडो
घोटकः	घोडग्रो	घोडउ	गुोड़ो	घोडो

यह **ग्रोकार** स्वराघात वाला ह्रस्व है। स्वतंत्र रूप में नीचे जैसे शब्द भी मिलते हैं—

भयं	भग्रं	भउ ,	भो	भो
जलौका	जलोग्रा	जलोउ	जळो	जळो
—	—	—	खो	खस
गोधा	गोहा	गोह	गुो	घो
क्रोशः	कोसो	कोसु	कुो	कोस (distance)
कशि	—	—	को	कोस (ग्रोजार)

ऐ

"ग्रइ" के संधि स्वरात्मक उच्चारण के कारण वागड़ी में एकारान्त शब्द बोले जाते हैं। जैसे कि—

ज़ै (जिस), कै (किस), स़ै (दर्जी), दै (देह), सै (सही, स्वीकार्य), ।

ग्रौ

ग्रौ वाले निम्न शब्द ध्यान पर ग्राये हैं—

वौ (वधू), गौ (गाय), सौ (सर्व),

व्यंजन समूह (Consonents)

१. स्पर्श व्यंजन (Plosives)

संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से तो क से म तक के २५ वर्णों को स्पर्श व्यंजन कहे हैं, किन्तु आज उच्चारण की दृष्टि से देखने पर कुछ न कुछ परिवर्तन हुआ है। स्थानों के विषय में भी जब हम वागड़ी, गुजराती आदि भाषाओं की उच्चारण प्रक्रिया देखते हैं तब हमें कुछ अंतर दिखाई देता है। जैसे कि—

क ख ग घ का उच्चारण आज शुद्ध कण्ठ स्थानीय नहीं रहा है। क़ ख़ ग़ घ़ ये अरबी उच्चारण हमें स्पष्ट कण्ठय दीख पड़ते हैं तो वागड़ी के क ख ग घ हमको कण्ठ की बारी से कुछ आगे बढ़कर मृदुतालु की ओर से उच्चरित सुनाई देते हैं। वागड़ी में तालव्य वर्गीय व्यंजन मिलते ही नहीं हैं। एक ज़ व्यापक रूप से सुनाई देता है जो स्पर्श-संघर्षी (affricate) है। वागड़ी में प्रत्येक स्पर्श व्यंजन का किस प्रकार से उच्चारण होता है उसका विचार यहाँ प्रस्तुत करना ठीक होगा—

(१) क

यह वर्ण श्वसित अल्प प्राण कोमल तालव्य (Soft Palated) स्पर्श ध्वनि है। इसका उच्चारण जीभ के पृष्ठ भाग से कोमल तालु का स्पर्श करने से होता है। विभिन्न स्वरों के साथ आने से कठिन तालु तक भी ध्वनि आ जाती है। यह परिवर्तन अन्य वर्गीय ध्वनियों में भी सामान्य है।

क आदि मध्य और अन्त में भी आता है, जैसे कि—कगरवु, अकमु, मनक

(२) ख

यह ध्वनि क का महाप्राणित रूप है। वह वर्ण वागड़ी में शब्द के आरम्भ में ही आता है। जैसे कि—खटकवु, खटिक,

गुजराती आदि भाषाओं में यह वर्ण तीनों स्थानों पर आता है। समान शब्दों का वागड़ी में उपयोग होता है तब मध्य और अन्त में क ही उच्चरित होता है। जैसे कि—परकवु (गु० परखवुं), पाँक (गु० पांख)

(३) ग

यह वर्ण क की तरह ही उच्चरित होता है, लेकिन क अघोष है और यह घोष है। यह वर्ण तीनों स्थानों में उच्चरित होता है। जैसे कि—

गराक, पगलु, पोग

(४) ग़

यह वर्ण "ग" और महाप्राण "घ" के बीच का उच्चारण है और मात्र वागड़ी में ही सुनाई पडता है। वागड़ी में मध्य और अन्त दशा में महाप्राण व्यंजनों का उच्चार अल्प प्राण व्यंजनों में परिणत हो जाता है। और आदि में तो स्पष्ट महाप्राण उच्चार होता है सिर्फ आदि में आने वाला "घ" पूर्ण महाप्राण नहीं रहता

है और न "ग" के स्वरूप में अल्प प्राण होता है। इसके उच्चारण में ग से आगे बढ़कर घ के उच्चार तक न जाकर बीच में जिह्वा का अग्र भाग रुक जाता है। इस उच्चारण को व्यक्त करने के लिये मैंने नुकता वाले "ग़" का स्वीकार किया है यह अरबी कंठय ग़ नहीं है।

ग़ के उदाहरण

ग़ोर—(गु० घर)
ग़ण्णु—(गु० घरेणु)
गि़—(गु० घी)

(५) घ

यह वर्ण यों तो ग का महाप्राण उच्चारण है, और वागड़ी में इसका उपयोग नहींवत् है। बहुत थोड़े शब्दों के आरम्भ में ही बहुत स्वल्प स्वरुप में सुनाई देता है। जैसे कि—घाट, घटि, घांटि, घोर।

बाकी तो मध्य और अन्त सभी दशाओं में 'गकार' का ही स्पष्ट श्रवण होता है। जैसे कि—पागड़ि (गु० पाघडी) वाग (गु० वाघ)।

(६) ट

यह वर्ण श्वसित अल्प प्राण और कठोर तालव्य है। यह शुद्ध मूर्धन्य आज रहा ही नहीं है। इसके उच्चारण में जीभ का अग्रभाग कठोर तालु में स्पर्श करता हुआ दाँतों के मूल की ओर जाता हुआ अनुभव में आता है। यह आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में आता है। जैसे कि—टकटि, वाँटवु, पाट

(७) ठ

यह वर्ण ट का ही महा प्राण है। वागड़ी में सिर्फ शब्दारंभ में ही आता है और मध्य तथा अन्त में तो ट के रूप में ही उच्चरित है। जैसे कि—

ठगारु; किन्तु कटण (गु० कठण), मट (गु० मठ)।

(८) ड

ट की तरह यह वर्ण भी उच्चरित होता है। किन्तु यह घोष है, जबकि ट अघोप है। यह उच्चारण आदि मध्य और अन्त तीनों स्थानों में आता है। परन्तु मध्य और अन्त में आता है तब समान गुजराती शब्दों में आते हुए ढ का ही वहाँ प्रतिनिधित्व रखता है। जैसे कि—डकोरो; किन्तु काडवु (गु० काढवुं), वाडवु (गु० वाढवुं, कड़ि (गु० कढी), कोड (गु० कोढ)।

अभाआ से आगे बढ़ते एवं मभाआ के देशी शब्दों में ड्ड और ड्ढ के विकास में यही ड आता है। यह कठोर तालव्य ही है। सानुनासिक स्वर के बाद भी वही कठोर तालव्य है। जैसे कि—

गाड्ड, वडो (सं० वृद्ध, प्रा० वड्ढ), गाँड्ड, खांड, सा़ंड, राँड, वाँड्ड।

(९) ढ

यह वर्ण 'ड कार' का महाप्राण है और वागड़ी में शब्दारंभ में ही आता है। मध्य और अन्त में तो, ऊपर कहे अनुसार, ढ के स्थान पर शुद्ध ड ही उच्चरित होता है। जैसे कि—ढगलो, ढाँकरणु, ढ्रोल,

(१०) त

यह श्वसित अल्प प्राण दंत्य स्पर्श है और जीभ के अग्र भाग का ऊपर के दंतमूल के साथ स्पर्श करने से उत्पन्न होता है। वह आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में आता है। जैसे कि—तवलु, ज़ातरा, वात।

(११) थ

यह वर्ण त का महा प्राण ही है। वागड़ी में तो सिर्फ शब्दारंभ में ही आता है। मध्य और अन्त दशा में थ के स्थान पर त ही उच्चरित होता है। उदाहरणार्थ—

थापवु; किन्तु आतोड़ो (गु० हथोडो), रत (गु० रथ)।

(१२) द

यह वर्ण त की तरह ही उच्चरित होता है, किन्तु यह घोष है। यह आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर आता है। जैसे कि—

दण्णु (गु० दळणुं), गादवु (गु० गाडवुं), साद (गु० साद)।

(१३) ध

यह वर्ण द का ही महा प्राण है और वागड़ी में सिर्फ शब्दारंभ में ही आता है। मध्य और अन्त में ध के स्थान पर द ही उच्चरित होता है। जैसे कि—

धाववु (गु० धाववुं); किन्तु राँदवु (गु० रांधवुं), वाँदो (गु० वांधो), खाद, (गु० खाद्य)।

(१४) प

यह वर्ण श्वसित ओष्ठ्य स्पर्श है। इसके उच्चारण में जीभ का कोई उपयोग नहीं होता है। दोनों होठ मिली हुई स्थिति में से खुलते हैं। यह वर्ण आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में आता है। जैसे कि—

पकवाड़िय‌ु; पापोड़, वाप

(१५) फ

यह प का ही महा प्राण उच्चारण है। इसका सादृश्य अंग्रेजी Ph के साथ हो सके। वागड़ी में यह शब्दारंभ में ही आता है। मध्य और अंत में आता है, तब उसका स्थान प ले लेता है। उदाहरणार्थ—

फणगु; किन्तु राँपड़ो (गु० राफडो), गपा (गु० गुफा)

(१६) ब

यह वर्ण प की तरह ही उच्चरित होता है, किन्तु घोष है। यह आदि, मध्य और अंत तीनों स्थानों पर आता है। जैसे कि—

वळद, नवळु, राव।

(१७) भ

यह वर्ण ब का महाप्राण उच्चारण है। वागड़ी में यह मात्र शब्दारंभ में ही प्रयुक्त होता है। मध्य और अंत में उसका स्थान ब ले लेता है जैसे कि—

भवो; किन्तु भवो (गु. भाभो), किन्तु थाँबलो गु. थांभलो), खँबो (गु. खभो), गाव (गु० गाभ)।

२. स्पर्श-संघर्षी (affricate)

ऊपर एक स्थान पर कहा गया है कि वागड़ी में च छ ज भ उच्चारणों का सर्वथा अभाव है। किन्तु करीब अंग्रेजी Z के अनुरूप एक उच्चारण व्यापक है। उसका उच्चारण करते समय जीभ का अग्रभाग चपटा बनकर दाँतों के मूल की ओर झुकता है और उष्माक्षरों की तरह थोड़ा सिसकार का आभास होता है। यह महाप्राण घोष उच्चारण है। उच्चारण स्थानों का संघर्ष यहाँ स्पष्ट प्रतीत होता है। यह उच्चारण गुजरात के देहातों में भी बहुत व्यापक है। शिष्ट लोग भी हाज़ तो (गु० हाज-तो) जैसे शब्दों में यह उच्चारण व्यक्त करते है। इसमें से घोषपन चला जाय तो उच्चारण "हास्तो" के स्वरूप में आ जाता है। वागड़ी में यह आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में सुनाई देता है। जैसे कि—

ज़म्मु ज़मवु	(गु० जमवुं),	ज़ाँपो	(गु० झांपो),
ज़ज़मन	(गु० जजमान)	वाँज़ुवि	(गु० वांझणी),
राज़	(गु० राज),	साँज़	(गु० सांझ),

स्पष्ट होगा कि समान मूल की भाषाओं में जहाँ ज-झ हैं वहाँ वागड़ी में यह ज़ ही उच्चरित होता है।

उधार लिये हुए शब्दों में भी यह व्यापक है—नज़र, नज़रणु, वज़न।

३. अनुनासिक किंवा नासिक्य (Nasals)

ङ—संस्कृत व्याकरणों में जिनको वर्गीय-अनुनासिक कहते हैं, उनमें से वागड़ी में तालव्य 'ञ्' नहीं है। 'ङ' तत्सम और तत्समाभासी शब्दों में ही क वर्गी वर्णों के पूर्व दीखता है। जैसे कि—रंग, भंग, ढंग, अंग, नंग।

यह श्वसित अल्प प्राण कोमल तालव्य स्पर्श-ध्वनि है। किन्तु इसके उच्चारण में पूर्व स्वर नासिका स्थान में से गुजरता है। इस कारण से वह कुछ रणकार से ध्वनित होता है।

अनुस्वार का प्रतिनिधि होने के कारण यह कोई स्वतंत्र वर्ण नहीं कहा जा सकता है।

ण

उच्चारण प्रक्रिया तो ऊपर की ही है। किन्तु स्थान की दृष्टि से श्वसित अल्पप्राण कठोर तालव्य घोष वर्ण है और ड़ की तरह दाँतों की ओर आगे बढ़कर

उच्चरित होता है। यह बागड़ी में उच्चारंभ में नहीं आ सकता है। पश्चिमी राजस्थानी के सभी प्रकारों में स्वतन्त्र वर्ण के रूप में यह उच्चरित होता है और नासिक्य होने के कारण इसके पूर्व का स्वर सानुनासिक बनता है।

उदाहरणार्थ—रहणो, मणिको, पाणि, बाण, लाण,

न

यह अल्प प्राणित वर्त्स्य (alveolar) नासिका स्थानीय घोष दंत्य व्यंजन है। अन्य नासिका स्थानीय वर्णों की तरह इसका भी पूर्व का ही स्वर सानुनासिक बनता है। 'न' के उच्चारण में दाँतों के मूल का स्पर्श होता है, नहीं कि दाँतों का। यह आरम्भ में, मध्य में और अन्त में तीनों अवस्थाओं में आता है, किन्तु जब प्रारम्भ में आता है तब नासिका स्थान का स्पर्श बहुत कम होता है। उदाहरणार्थ—

नाक, नातिन, मान

म

यह अल्पप्राण नासिका स्थानीय घोष ओष्ठ्य व्यंजन है। अन्य नासिका स्थानीय वर्णों की तरह इसका भी पूर्व का ही स्वर सानुनासिक बनता है। यह आदि, मध्य और अन्त तीनों अवस्थाओं में आता है। किन्तु जब प्रारम्भ में आता है तब नासिका स्थान का स्पर्श बहुत कम होता है। उदाहरण के लिये—

माम्बाद, ममेति, मान।

४. पार्श्विक (Lateral)

ल

इसमें मुख की मध्य रेखा पर कहीं भी दो अंगों के सहारे वायु मार्ग को अवरुद्ध किया जाता है। फलतः हवा एक या दोनों ओर से निकलती है। ल् इस प्रकार का वर्ण है। यह अल्पप्राण घोष वर्त्स्य (alveolar) पार्श्विक व्यंजन है। यह जिह्वा के अग्रभाग से ऊपर के दाँतों के मूल को स्पर्श करने से उच्चरित होता है। यह आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में आता है। जैसे कि—

लकड़ (तु० लक्कड़), मलड़ (तु० मक्कड़), मूल (तु० मूल)

५. लुंठित (rolled)

र

र् लुंठित घोष वर्त्स्य अल्प प्राण व्यंजन है। ऊपर के दाँतों की किनारी के ऊपर के भाग में जिह्वा का अग्रभाग कुछ त्वरा से दो-तीन आवर्तनों के साथ इस वर्ण को व्यक्त करता है।

ल् और र् के उच्चारण स्थान में इतना तारतम्य है कि, ल् का स्थान कठोर तालु की ओर है, और र् का स्थान दंतमूल की ओर है। और र् के उच्चारण में जिह्वा के अग्रभाग के आवर्तन होते हैं और आवाज़ कुछ कंप युक्त (thrilling) होता

है। इसी कारण छोटे बच्चों को 'र् कार' का उच्चारण करने में बाधा होती है और र् के स्थान पर वे ल् का उच्चारण करते हैं। 'र् कार' आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में आता है। जैसे कि—

रकवाळ् (गु० रखवाळु), अरक (गु० हरख), वकार (गु० वखार)।

६. उत्क्षिप्त (flapped)

ड़

यह न तो ड है और न लुंठित र ही। वह घोष, उत्क्षिप्त, और पश्चादवर्ती (retroflex) व्यंजन है। जब दो स्वरों के बीच में अथवा तो शांत (silent। अ के साथ अन्त में आता है तब आभाआ और मभाआ के असंयुक्त ट के विकास में आने वाला यह ड़ दाँतों की ओर कठोर तालु पर जिह्वा के अग्रभाग के प्रहार के साथ उच्चरित होता है। उच्चार पूर्ण होते ही वलित–जिह्वा अपने स्थान पर आसानी से आ जाती है। यह वर्ण मध्य और अन्त में ही आता है। जैसे कि—

पड़वु, गोड़ो (गु० घोडो), वागड़, मेवाड़, ऋक् प्रातिशाख्य में वेदमित्र के नाम से जिह्वामूल और तालव्य स्थान से निर्दिष्ट उच्चारणों में जो तालव्य उच्चारण है वह इस ड़ का है। जैसे कि—

अग्निमीड़े पुरोहितं।

वह पुराने ग्रन्थों में ळ संकेत से बताया जाता था। जबकि आभाआ से आगे बढ़ते एवं मभाआ के देशी शब्दों में ड्ड और ड्ढ के विकास में जो ड आता है वह तो सर्वथा ड ही है, वह ड़ नहीं है। जैसे कि—

गाडु (प्रा० गड्डु), पाडो (प्रा० पड्डु), वडो (सं० वृद्ध, प्रा० वड्डु)।

सानुनासिक उच्चारण के बाद भी ड आता है, न कि ड़। जैसे कि—

गाँडु, खाँड, साँड (गु० साँढ), राँड, वाँडु, खाँडु,।

ळ

यह उत्क्षिप्त, पश्चादवर्ती, घोष व्यंजन है। किन्तु ड़ की तुलना में जिह्वा का अग्र मृदुतालु की ओर जाकर कुछ गोलाकार से स्पर्श करता है तब यह ध्वनि उठती है। ऋक्प्रातिशाख्य में वेदमित्र ने जो जिह्वा मूल स्थान बताया है वह इस ळ का है। और ऋग्वेद में मात्र इला और इला शब्द से निकले हुए शब्दों में ही सीमित है। द्राविड़ी भाषाओं में एवं नभाआ की पश्चिम विभाग की भाषाओं में आभाआ के ल के स्थान पर जो ळ कार उच्चरित होता है वह यह ध्वनि है। वागड़ी में मध्य और अन्त में इसका उच्चारण होता है। जैसे कि—

कोळियो, काळ, साळ, वाळ।

"मलवु" क्रिया रूप में कुछ प्रांतीयता दीख पड़ती है जिसका उच्चारण अधिकतर लोग "मलवु" करते हैं। बाकी अभाआ में "ल्य" का संयोग हो और आगे

मभाआ में 'ल्ल" बना हो अथवा ऐसे देशी "ल्ल" वाले शब्द हों तो वागड़ी में आकर 'ल' ही होता है। जैसे कि—

सं०	प्रा०	वा०	गु०
शल्य	सल्ल	साल	स.ल
भद्र	भल्ल	भलु	भलुं
पद्र	पल्ल	पाल	पाल
पर्यंक	पल्लंक	पलंग	पलंग
—	भिल्ल	भिल	भील

७. ऊष्माक्षर (Sibilant)

स

यह अघोष, संघर्षी, वर्त्स्य ध्वनि है। जिह्वा का अग्र विस्तार कठोर तालु के नजदीक आ जाता है और जिह्वा के आगे का नीचे के भाग नीचे के दाँतों की ऊपर की कीनारी को स्पर्श करता है, तब यह शीतकार वाला वर्ण निकलता है। आभाआ और मभाआ की च छ ध्वनियों का वागड़ी में स ही उच्चरित होता है। जैसे कि—

सतरि (सं० छत्रिका), सनण (सं० चंदन), सोर (सं० चोर), असरत (गु० अचरज), नास (सं० नृत्य, प्रा० नच्च, गु० नाच)।

वागड़ी में अर्वाचीन समय में कितने ही तत्सम शब्द कुछ विकृति से बोले जाते हैं। ऐसे शब्दों में श, ष, स के स्थान में प्राकृतों की तरह स उच्चारण होता है। जैसे कि—

सरण	(सं० शरण)
सरम	(फा० शर्म)
सकल	(अ० शक्ल)
सक	(फा० शक)
सकति	(सं० शक्ति)
रुसि	(सं० ऋषि)
वेस	(सं० वेष)
सत	(सं० सत्य)
सदावरत	(सं० सदाव्रत)

ऐसे शब्दों की संख्या काफी है।

८. महाप्राण (Aspirate)

स़

यह श्वसित, अघोष, संघर्षी, वर्त्स्य स्वर यन्त्र मुखी (glottal) ध्वनि है। इस वर्ण के उच्चारण में मुँह मात्र खुला रहता है और वायु आगे बढ़ता है, दूसरे

किसी अवयवों का उपयोग नहीं होता है। ह़् और स़् के उच्चारण में अन्तर सिर्फ इतना ही है कि ह़् में मृदु घोष है और स़् में कठोर शीतकार है। आभाआ के श, ष और स के स्थान में मभाआ में जो स आता है वह वागड़ी में 'स़' से व्यापक है। जैसे कि—

स़ाकोर	(सं० शर्करा)
स़कन	(सं० शकुन)
स़राप	(सं० शाप)
स़ला	(सं० शिला)
स़ाप	(सं० सर्प)
स़पनु	(सं० स्वप्न)
स़रकु	(सं० सदृक्ष)

इसी तरह अरबी, फारसी शब्दों से प्राप्त शब्दों में भी यह उच्चारण है।

स़रित (फा० शर्त) स़रमो (अ० सुर्मह)

६. अर्ध स्वर (Semi Vowels)

य़

यह वर्ण अल्प प्राण, घोष, तालव्य, व्यंजन है। जिह्वा का अग्रभाग थोड़ा सा चपटा बनकर मृदुतालु के समानान्तर आ जाता है, किन्तु स्पर्श नहीं करता है। इ के उच्चारण में जो सारल्य है, उसमें जीभ को उठाने से, वह य के रूप में परिणत होता है। इसी कारण अर्ध स्वर कहा जाता है। "य़ार और याद" जैसे दो एक शब्दों के अपवाद को छोड़कर वागड़ी में शब्दारंभ में य नहीं आता है। "यार-याद" का भी बहुतेरे लोग "आर-आद" उच्चारण करते हैं। शब्द के मध्य में एवं अन्त में य वागड़ी में प्रयुक्त होता है। किन्तु इसका उच्चारण पूर्ण व्यंजनात्मक नहीं है। जैसे कि—रुपिय़ो, कोळिय़ो, कयुँ, वाय़का, राय़को, गाय़, जाय़, खाय़, स़ाय़, लाय़, वाय़रो, वाय़रो, दाय़को, ताय़पो, पाय़रो। आचार्य हेमचन्द्र ने प्राकृत व्याकरण में अवर्णो यश्रुति : (सि० है० ८–१–१८०) से जो 'य श्रुति' कही है और पाणिनी ने व्योर्लघु प्रयत्नतरः शाकटायन स्य (अष्टा० व्या० ८–३–१८, से जो लघु प्रयत्न कहा है वह 'यह य़ श्रुति' है। इसी कारण "कयुँ" में पूर्व स्वर में स्वर की लघुता ही रहती है, वह स्वर गुरु नहीं बन सकता है।

पूर्ण 'य कार' से अलग बताने के लिये ही मैंने नुक्ता वाला 'य़' पसन्द किया है।

व

यह अल्प प्राण, घोष, दंत तालव्य, संघर्षी ध्वनि है। इसके उच्चारण में ऊपर के दाँत नीचे के ओष्ठ का जरासा स्पर्श कर लेते हैं। उसी समय हवा दाँतों

और ओष्ठ में से संघर्ष पूर्वक निकलती है। वह आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में आता है। जैसे कि—

वाय़रो, अवाव, अव़ा

वागड़ी व्यंजनों का विकास

१. स्पर्श व्यंजन

(१) कोमल तालव्य

क का विकास : वागड़ी क आभाआ और मभाआ के "क" "क्क" में से उतर आया है।

१. क—कर्पूर	—	कपुर	(गु० कपूर)
कठिन	—	कटण	(गु० कठण)
कपाल	—	कपाळ	(गु० कपाळ)
कुपुत्र	—	कपुत	(गु० कपूत)
करन्ड	—	कण्डिय़ो	(गु० करंडियो)

२, क्क :—चक्र	(प्रा० चक्क)	—	साकड़ो	(गु० चाकडो)
मत्कुण	(प्रा० मक्कुण)	—	माकोंण	(गु० मांकड)
उत्कर	(प्रा० उक्कर)	—	अकुड़ो	(गु० उकरडो)
पक्व	(प्रा० पक्क)	—	पाकु	(गु० पाकुं)
अर्क	(प्रा० अक्क)	—	आकोड़ियो	(गु० आकडो)
शिक्य	(प्रा० शिक्क)	—	सिकु	(गु० शींकुं)

मभाआ के "क्ख" के विकास में सामान्य तौर पर से ख आना चाहिए वहाँ भी वागड़ी में "क" का ही स्वीकार है। जैसे कि—

परीक्षा	(प्रा० परिक्खा)	—	परक	(गु० परख)
व्याख्यान	(प्रा० वक्खाण)	—	वकेंण	(गु० वखाण)
भिक्षा	(प्रा० भिक्खा)	—	भिक	(गु० भीख)

इसके सादृश्याभास से गुजराती आदि में जहाँ अनादि "ख" है वहाँ सर्वत्र वागड़ी में "क" ही उच्चरित होता है। जैसे कि—

अ़रक	(गु० हरख)
आँक	(गु० आंख)
नोक	(सं० नख)

उधार लिये हुये शब्दों में भी क सुरक्षित है; जैसे कि—

कोट (सं०), मकन (अर० मकान), कलम (फा०)

(२) ख का विकास

वागड़ी में शब्दारंभ में ही प्रयुक्त होने वाला यह व्यंजन आभाआ के और मभाआ के ख से उतर आया है। जैसे कि—

खनति		—	खणँ	(गु० खणे)
खादति		—	खाय़	(गु० खाय)
खिद्यते		—	खिज़ाय़	(गु० खिजाय)
खदिर		—	खैंरियो	(गु० खेरु)
क्षीर	(प्रा० खीर)	—	खिर	(गु० खीर)
क्षप	(प्रा० खव)	—	खोवु	(गु० खोवुं)
क्षमते	(प्रा० खमइ)	—	खमँ	(गु० खमे)

(३) ग का विकास

यह आभाआ के "ग" और मभाआ के "ग्ग" से उतर आया है।

१. ग—गर्भ	—	गरव	(गु० गर्भ)
गर्जति	—	गाज़ँ	(गु० गाजे)
गूथ	—	गु	(गु० गू)
गोष्टि	—	गो	(गु० गोठ)
गवाक्ष	—	गोकड़ो	(गु० गोखलो)

२. ग्ग—उद्गमन	(प्रा० उग्गमण)	—	उगमणु	(गु० उगमणुं)
मुग्दा	(प्रा० मुग्गर)	—	मोगरि	(गु० मोगरी)
नग्न	(प्रा० नग्ग)	—	नाँगु	(गु० नागुं)
अग्नि	(प्रा० अग्गी)	—	आग	(गु० आग)
योग्य	(प्रा० जोग्ग)	—	ज़ोगु	(गु० जोगुं)
जाग्र	(प्रा० जग्ग)	—	ज़ाग	(गु० जाग)
मार्ग	(प्रा० मग्ग)	—	माँग	(गु० माग)
फाल्गुन	(प्रागु फग्गुण)	—	फागण	(गु० फागण)

घ के स्थान में भी वागड़ी में ग सुनाई देता है। अपवाद अवश्य है जो नीचे "घ" में बताया जायगा—

उधार लिये शब्दों में भी "ग" सुरक्षित है। जहां अरबी-फारसी "ग" का सादा "ग" आता है, जैसे कि—गरिब, गलत, गुस्सो, गमार।

३. घ—घन	—	गणु	(गु० घणुं)
घृत	—	गि़	(गु० घी)
घोटक	—	गोड़ो	(गुं० घोडो)

४. ग्घ—उद्घाट	(प्रा० उग्घाड)	—	उगाड	(गु० उघाड)
व्याघ्र	(प्रा० वग्घ)	—	वाग	(गु० वाघ)
समर्घ	(प्रा० समग्घ)	—	सुंगु	(गु० सोघुं)
महार्घ	(प्रा० महग्घ)	—	मोगु	(गु० मोघुं)

ग़ का विकास

ग—आभाआ और मभाआ के शब्दारंभ में आने वाले "घ" का बागड़ी में अर्ध महाप्राण दशा में उच्चारण होता हैं।

घोटक	(प्रा० घोडअ)	—	ग़ोड़ो	(गु० घोडो)
गृह	(प्रा० घर)	—	ग़ोर	(गु० घर)
घन	(प्रा० वण)	—	ग़णु	(गु० घणुं)
घृत	(प्रा० घिअ)	—	गि़	(गु० घी)

घ का विकास

घ—यों तो बागड़ी में आभाआ और मभाआ से निष्पन्न किसी भी प्रकार के "घ" का उच्चारण "ग" ही होता है, तो भी घाट, घटि, घाँटि, जैसे नये आये हुए तत्सम शब्दों के असर से "घ" उच्चारण सीमित है।

कठोर तालव्य

(१) ट का विकास

बागड़ी ट आभाआ के ट और मभाआ के 'ट्ट' में से आया है।

१. ट—टंक	—	टको	(गु० टको)
टंकति	—	टाँकँ	(गु० टांके)
टिप्पणी	—	टिपणु	(गु० टीपणुं)
टिट्टिभ	—	टेटोड़ि	(गु० टिटोडी)
कण्टक	—	काँटो	(गु० कांटो)

२. ट्ट—भर्त	(प्रा० भट्ट)	—	भट, भाट	(गु० भाट)
वर्त्मा	(प्रा० वट्टा)	—	वाट	(गु० वाट)
दीपवर्ती	(प्रा० दीवउट्टि)	—	दिवेँट	(गु० दिवेट)
त्रुट्यति	(प्रा० तुट्टइ)	—	टूटँ	(गु० तूटे)
खट्वा	(प्रा० खट्टा)	—	खाट	(गु० खाट)
प्रा० हट्ट		—	आट	(गु० हाट)
कर्तरी	(प्रा० कट्टरी)	—	कटार	(गु० कटार)
इष्टि	(प्रा० इट्टी)	—	इट	(गु० ईट)

क्वचित् आभाआ के त से भी ट मिलता है।

त्रुट्यति	(प्रा० तुट्टइ)	—	टुटे	(गु० टुटे, तुटे)
तिलक	(प्रा० तिलअ)	—	टिलु	(गु० टीलुं)

उधार लिये हुए टेम (अं० टाइम) में "ट" सुरक्षित है और मोटर (अं०) में भी "ट" सुरक्षित है।

जब शब्दों के आदि में ठ नहीं है तब बागड़ी में ठ के स्थान पर ट उच्चरित होता है। जैसे कि—

मुष्टि	(प्रा० मुट्ठी)	—	मुंट	(गु० मूठ, मूठी)
मिष्ट	(प्रा० मिट्ठ)	—	मेंटु	(गु० मीठुं)
मृष्ट	(प्रा० मिट्ठ)	—	मेंटु	(गु० मीठुं)
शुंठि	(प्रा० सुंठी)	—	सुंट	(गु० सूंठ)
उत्थित	(प्रा० उट्ठिअ)	—	उटवु	(गु० उठवुं)
अष्ट	(प्रा० अट्ठ)	—	आट	(गु० आठ)
पृष्ठ	(प्रा० पुट्ठ)	—	पुट	(गु० पूंठ)
नष्ट	(प्रा० नट्ठ)	—	नाटो	(गु० नाठो)
कष्ट	(प्रा० कट्ठ)	—	काटु	(गु० काठुं)
अंगुष्ठ	(प्रा० अंगुट्ठ)	—	आँगुटो	(गु० अंगूठो)
कोष्ठ	(प्रा० कोट्ट)	—	कुटो	(गु० कोठो)
गोष्ठि	(प्रा० गोट्ठी)	—	गुट	(गु० गोठ)
ज्येष्ठ	(प्रा० जेट्ठ)	—	जेट	(गु० जेठ)
श्रेष्ठी	(प्रा० सेट्ठी)	—	सेट	(गु० शेठ)

उधार लिये हुए शब्दों में भी यह प्रक्रिया काम करती है। जैसे कि—

भट (सं० भठ) अट (सं० हठ) आदि।

२. ठ का विकास

बागड़ी में शब्दारम्भ में ही ठ आता है और वह ठ पर से मात्र सं० ठक्कुर एक शब्द से मिला है। जैसे कि—ठाकोर (गु० ठाकोर) शेप मभाआ में प्राप्त आदि के ठ से, जैसे कि—सं० स्थान (प्रा० ठाण) ठाण (गु० ठाण)।

प्रा० ठल्ल	—	ठालु	(गु० ठालुं) थ मभाआ के थ से भी
प्रा० ठुंठ	—	ठुंटु	(गु० ठूंठु) (प्रा.) थट्ट—ठाट (गु० ठाठ)

(३) ड का विकास

आभाआ के ड और मभाआ के व्युत्पन्न ड और ड्ड से मिला है।

दंड	—	डांडो	(गु० दांडो, डांडो)
खंडते	—	खाँडें	(गु० खांडे)
अंड	—	एँडु	(गु० ईंडु)
मंडते	—	माँडें	(गु० मांडे)
मुंडति	—	मुंडें	(गु० मूंडे)

रंडा		—	राँड	(गु० रांड)
मंडप		—	माँडवो	(गु० मांडवो।
छर्दयदि	(प्रा० छंडइ)	—	साँडँ	(गु० छांडे।
उड्डयति	(प्रा० उड्डइ)	—	उडँ	(गु० उडे)
—	(प्रा० हड्डु)	—	आड	(गु० हाड)
—	(प्रा० पड्डु)	—	पाडो	(गु० पाडो)
—	(प्रा० गड्डु)	—	गाडु	(गु० गाडुं)
जाड्य	(प्रा० जड्डु)	—	जाडु	(गु० जाडुं)

मभाआ में जब मध्यवर्ती स्थिति में ड्ढ एवं ढ आते हैं उनके विकास में वागड़ी में ड ही उच्चरित होता है।

कष्ट	(प्रा० कड्ढ)	—	काडवु	(गु० काढवुं)
वृद्ध	(प्रा० वड्ढ)	—	वडो	(गु० वडो)
षंढ़	(प्रा० संढ)	—	साँड	(गु० सांढ)
द्वयर्ध	(प्रा० दोड्ढ)	—	डोड	गु० दोढ, डोढ)
मठ	(प्रा० मढ)	—	मट	(गु० मढ)
वर्धयति	(प्रान् वड्ढइ)	—	वाडे	(गु० वाढे)
कुष्ट	(प्रा० कुड्ढ)	—	कोड	(गु० कोढ।

द—आभाआ के थोड़े द वाले शब्दों का भी ड वागड़ी में मिलता है।

दशति	(प्रा० डसइ, डंकइ)	—	डँकँ	(गु० डंखे)
दंड	(प्रा० डंड)	—	डाँडो	(गु० डांडो, दांडो)
दर्भ	(प्रा० डब्भ)	—	डावड़ो	(गु० डाभ, डाभडो)
दोला	(प्रा० डोला)	—	डुोलवु	(गु० डोलवुं)

४. ढ का विकास

ढ—आभाआ एवं मभाआ के ढ से शब्दारम्भ में ही ढ मिला है।

प्रा०	ढाल	—	ढाल	(गु० ढाल)
प्रा०	ढंक	—	ढाँकवु	(गु० ढांकवुं)
प्रा०	ढंढोल	—	ढंडोळवु	(गु० ढंढोळवुं)
प्रा०	ढल	—	ढळवु	(गु० ढळवुं)
प्रा०	ढिल्ल	—	ढिलु	(गु० ढीलुं)

दंत्य व्यंजन

१. त का विकास

आभाआ के त और मभाआ के त्त पर से यह वागड़ी में उतर आया है।

त—तृण		—	तकलु	(गु० तणखलुं)
तृषा		—	तर	(गु० तरस)
त्रास		—	तरा	(गु० त्रास)
तरति		—	तरैं	(गु० तरे)
त्रिशति		—	तरि	(गु० त्रीश)
तडाग		—	तळाव	(गु० तळाव)
ताम्र		—	ताँबु	(गु० तांबु)
तानयति		—	ताणैं	(गु० ताणे)
तीक्ष्ण		—	तिकु	(गु० तीखुं)
मत्त		—	मातु	(गु० मातु)
अंत्र		—	आँतिड्डु	(गु० आंतरडुं)
तंतु		—	ताँतणो	(गु० तांतणो)
तित्तिर		—	तेतर	(गु० तेतर)
रक्त	(प्रा० रत्त)	—	रातु	(गु० रातुं)
मौक्तिक	(प्रा० मोत्तिअ)	—	मुोति	(गु० मोती)
सत्त	(प्रा० हत्त)	—	सात	(गु० सात)
सुप्त	(प्रा० सुत्त)	—	सुतो	(गु० सूतो)
दंतो		—	दाँत	(गु० दांत)
कर्तरि	(प्रा० कत्तरी)	—	कातँर	(गु० कातर)
वत्ता	(प्रा० वत्ता)	—	वात	(गु० वात)
रात्रि	(प्रा० रत्ती)	—	रातर	(गु० रात)
सूत्रधार	(सूत्तहार)	—	सुतार	(गु० सुथार)

मभाआ के विकास में मध्य और अन्त में मिलने वाला 'थ कार' वागड़ी में त के रूप में ही मिलता है। जैसे कि—

चतुर्थ	(प्रा० चउत्थ)	—	सोतु	(गु० चोथुं)
सार्थ	(प्रा० सत्थं)	—	साते	(गु० साथे)
हस्त	(प्रा० हत्थ)	—	आत	(गु० हाथ)
मस्तक	(प्रा० मत्थअ)	—	मातु	(गु० माथुं)
स्वस्तिक	(प्रा० सत्थिअ)	—	साँतियो	(गु० साथियो)
अस्तमत्त	(प्रा० अत्थमण)	—	आतमणु	(गु० आथमणु)

उधार लिये हुए तरुवार (अर० तलवार), तग़दीर आदि में "त" सुरक्षित है। तनका (अर० तनखा)

२. थ का विकास

थ—आभाआ का एक थूत्कृ शब्द है जिसमें "थुंक" (गु० थूंक) आया है।

बाकी तो स्त् और स्थ के विकास में मभाआ के थ द्वारा शब्दारंभ में ही मिलता है।

स्तंभते	(प्रा० थंभई)	—	थंवँ	(गु० थंभे)
स्तंभ	(प्रा० थंभ)	—	थाँबो, थाँवलो	(गु० थांभलो)
—	(प्रा० थक्क)	—	थाकवु	(गु० थाकवुं)
स्तन	(प्रा० थरण)	—	थान	(गु० थाण)
स्थापयति	(प्रा० —)	—	थापँ	(गु० थापे)
स्थाली	(प्रा० थाली)	—	थाळि	(गु० थाळी)
स्थान	(प्रा० थाण)	—	थाणु	(गु० थाणु)
	(प्रा० थग्ग	—	थाग	(गु० ताग)

३. द का विकास

द—आभाआ के द-द्द और मभाआ के द्द के विकास में वागड़ी को द मिला है। यह तीनों अवस्थाओं में आता है।

दश	—	दो, दस	(गु० दस)
दंत	—	दाँत	(गु० दांत)
दान	—	दाण	(गु० दाण)
दुग्ध	—	दुद	(गु० दूध)

द्द—कुद्दाल		—	कोदाळो	(गु० कोदाळो)
शब्द	(प्रा० सद्द)	—	साद	(गु० साद)
अर्द्र	(प्रा० अद्द)	—	आदु	(गु० आदु)

सोदागर आदि उधार लिये हुए अरबी शब्दों में "द" सुरक्षित हैं।

ध—मभाआ के द्ध के विकास में आने वाला ध वागड़ी में शब्द के मध्य और अन्त में द के रूप में ही उच्चरित होता हैं। जैसे कि—

दुग्ध	(प्रा० दुद्ध)	—	दुद	(गु० दूध)
योद्धा	(प्रा० जोद्धा)	—	ज़ोदो	(गु० जोद्धो)
शुद्धि-वुद्धि		—	सुदबुद	(गु० सूधवूध)
अंधि		—	आँदळ	(गु० आंधळुं)
स्कंध	(प्रा० कंध)	—	खाँद	(गु० कांध खांध)
वर्धते	(प्रा० वद्धइ)	—	वदँ	(गु० वधे)
अर्घ	(प्रा० अद्ध)	—	अरदु	(गु० अरधुं)

ओष्ठ्य

१. प का विकास

प—इस वर्ण का विकास आभाआ के प एवं मभाआ के प्प द्वारा हुआ है और वागड़ी में यह आदि, मध्य और अंत तीनों स्थानों में आता है।

पंच		—	पाँस	(गु० पांच)
पीत		—	पिळु	(गु० पीळुं)
पक्व		—	पाकु	(गु० पाकु)
पृष्ठ		—	पुट	(गु० पूठ)
पुत्र		—	पुत	(गु० पूत)
पृथुल		—	पोळु	(गु० पहोळुं)
पल्लव		—	पालो	(गु० पालव)
पर्ण		—	पानु	(गु० पानुं)
कम्पते		—	काँपेँ	(गु० कापे)
लिम्पति		—	लेपेँ	(गु० लिंपेँ)
उत्पधते	(प्रा० उप्पज्जइ)	—	उपजेँ	(गु० उपजे)
उत्पतति	(प्रा० उप्पडइ)	—	उपड़ेँ	(गु० उपडे)
प्य—रोप्यते	(प्रा० रोप्पइ)	—	रोपेँ	(गु० रोपे)
माप्य	(प्रा० मप्प)	—	माप	(गु० माप)
सर्प	(प्रा० सप्प)	—	साप	(गु० साप)
समर्पयति	(प्रा० समप्पइ)	—	सोपेँ	(गु० सोपे)
पर्पट	(प्रा० पप्पड)	—	पापोड	(गु० पापड)
कर्पट	(प्रा० कप्पड)	—	कापड़ु	(गु० कापड़ु)
आत्मा	(प्रा० अप्पा)	—	आप	(गु० आप)

आभाआ के "त्व" और "त्वन" के विकास मे मभाआ मे "प्प" आता है उसने तद्धित का वागड़ी प प्रत्यय दिया है। जैसे कि—

गड़पण	(गु० घप्पण)
रंडापो	(गु० रंडापो)

फ—मभाआ के मध्य और अन्त मे प्फ के विकास मे आने वाला फ वागड़ी मे प के स्वरूप मे ही प्रयुक्त होता है। जैसे कि—

वाष्प	(वाप्फ)	—	वपारो	(गु० वफारो)

इसी प्रक्रिया के अनुसार गुहा का गुजराती मे गुफा होता है, किन्तु वागड़ी मे गपा होता है।

२. फ का विकास

फ—वागड़ी मे शब्दारंभ मे ही यह वर्ण आता है और आभाआ और मभाआ के फ का विकास है।

फेन	—	फेण	(गु० फेण)
फल	—	फल	(गु० फळ)

फाल्गुन		—	फागण	(गु० फागण)
फुल्ल		—	फुल	(गु० फूल)
स्पंद	(प्रा० फंद)	—	फाँद	(गु० फांद)
स्फुरति	(प्रा० फुरइ)	—	फरँ	(गु० फरे)
स्फुट्यते	(प्रा० फुट्टइ)	—	फुटँ	(गु० फूटे)
स्फट्यते	(प्रा० फट्टइ)	—	फाटँ	(गु० फाटे)
स्फोट	(प्रा० फोड़)	—	फोड़ो	(गु० फोडो)

फायदो (अर. फायदह), फरक (अर. फर्क) आदि उधार लिए हुए शब्दों में "फ" सुरक्षित हैं।

३. ब का विकास

ब—यह वर्ण आभाआ और मभाआ के ब से उतर आया है। और आदि, मध्य तथा अन्त तीनों स्थानों में आता है।

बन्ध		—	बाँदवु	(गु० बांधवुं)
बहुल		—	बोळु	(गु० बहोळुं)
बालक		—	बालक	(गु० बाळक)
बोलयति		—	बुोळँ	(गु० बोले)
दुर्बल	(प्रा० दुब्बल)	—	दुबळु	(गु० दूबळुं)
कर्बुर	(प्रा० कब्बुर)	—	काबरु	(गु० काबरूं)
अर्बुद	(प्रा० अब्बुअ)	—	आबु	(गु० आबु)
आम्र	(प्रा० अंब)	—	आँबो	(गु० आंबो)
ताम्र	(प्रा० तंब)	—	ताँबु	(गु० तांबुं)
लम्ब	(प्रा० लंब)	—	लाँबु	(गु० लांबुं)
द्वार	(प्रा० बार)	—	बाण्णु	(गु० बारणुं)
द्वे	(प्रा० बे)	—	बँ	(गु० बे)
द्वादश	(प्रा० बारह)	—	बार	(गु० बार)
द्वितीय	(प्रा० बिइज्ज)	—	बिजु	(गु० बीजुं)
उपविशति	(प्रा० बइसइ)	—	बँ	(गु० बेसे)

बनमास (अर. बदमास), खबर (अर.) आदि उधार लिये हुए शब्दों में "ब" सुरक्षित है।

भ—मभाआ के ब्भ के विकास में आने वाला भ वागड़ी में मध्य और अन्त में ब के स्वरूप में ही आता है। जैसे कि—

उद्भर	(प्रा० उब्भर)	—	उबरो	(गु० उभरो)
ऊर्ध्व	(प्रा० उब्भ)	—	उबो	(गु० उभो)

कुंभकार	(प्रा० कुम्भआर)	—	कुंबार	(गु० कुंभार)
अभ्र	(प्रा० अब्भ)	—	आब	(गु० आभ)
गर्भ	(प्रा० गब्भ)	—	गाब	(गु० गाभ)
दर्भ	(प्रा० दब्भ)	—	डाब	(गु० डाभ)
भ्रातृ-भ्राता	(प्रा० भब्भआ)	—	भबो	(गु० भाभो)
जिह्वा	(प्रा० जिब्भा)	—	ज़िब	(गु० जीभ)

४. भ का विकास

भ—प्रभाआ के भ से यह बागड़ी को मिला है और मात्र शब्दारंभ में ही प्रयुक्त होता है।

भंग		—	भागवु	(गु० भागवुं, भांगवुं)
भिक्षा		—	भिक	(गु० भीख)
बुभुक्षा	(प्रा० भुक्खा)	—	भुक	(गु० भूख)
भषति		—	भसँ	(गु० भसे)
भाण्डागार		—	भंडार	(गु० भंडार)
भूमि		—	भुंय्	(गु० भोंय)
भ्रमति		—	भमँ	(गु० भमे)
भ्राता		—	भाइ	(गु० भाई)

स्पर्श-संघर्षी

ज़ का विकास

१. ज़—प्राभाआ एवं मभाआ जहाँ से भी आदि, मध्य और अन्त में स्वाभाविक रूप में ज होता है वहां सर्वत्र यह स्पर्श-संघर्षी ज़ उच्चरित होता है। जैसे कि—

जनयति	—	ज़णँ	(गु० जणे)
जमति	—	ज़मँ	(गु० जमे)
जूर्ण	—	ज़ूनु	(गु० जूनूं)
जानाति	—	ज़ाणँ	(गु० जाणे)
जिह्वा	—	ज़िब	(गु० जीभ)
ज्येष्ठ	—	ज़ेट	(गु० जेठ)
लज्जा	—	लाज़	(गु० लाज)
कज्जल	—	काज़ळ	(गु० काजळ)
उज्जागर	—	उज़ागरो	(गु० उजागरो)
अंजन	—	आज़णि	(गु० आंजणी)
पंजर	—	पाँज़रु	(गु० पांजरू)
राज्य	—	राज़	(गु० राज)

गर्जति		—	गाज्	(गु० गाजे)
अद्य	(प्रा० अज्ज)	—	आज्	(गु० आज, आजे)
उज्ज्वल	(प्रा० उज्जल)	—	उज्ळ	(गु० उजळुं)
वाद्य	(प्रा० वज्ज	—	वाज्	(गु० वाजुं)
विद्युत	(प्रा० विज्जू)	—	विज्ळि	(गु० वीजळी)
शय्या	(प्रा० सेज्जा)	—	सँज्	(गु० सेज)
कार्य	(प्रा० कज्ज)	—	काज्	(गु० काज)

झ—आभाआ और मभाआ के झ के विकास में भी वागड़ी में ज् का ही प्रयोग होता है।

झल्लरी		—	जालँर	(गु० झालेर)
क्षरति	(प्रा० झरइ)	—	जरँ	(गु० झरे)
संध्या	(प्रा० संझ्झा)	—	साँज्	(गु० सांझ)
वंध्या	(प्रा० वंझ्झा)	—	वाँज्वि	(गु० वांझणी)
मुह्यति	(प्रा० मुझ्झइ)	—	मोजाय्	(गु० मूंझाय)

य—आभाआ के शब्दारंभ में आने वाले 'यकार' का मभाआ द्वारा जो ज आता है वह वागड़ी में ज् ही है।

यूका	(प्रा० जूआ)	—	ज्	(गु० जू)
यव	(प्रा० जव)	—	जोव	(गु० जव)
योग्य	(प्रा० जोग्ग)	—	ज्ोगु	(गु० जोगुं)

अनुनासिक ण का विकास

१. ण—आभाआ और मभाआ के असंयुक्त ण से यह वागड़ी में आया है। और शब्दारंभ में नहीं आ सकता है। जैसे कि—

गुणित		—	गणु	(गु० गणु)
उत्पुनाति	(प्राा० उप्पणइ)	—	उपणवु	(गु० उपणवुं)
मणि		—	मणको	(गु० मणको)
माणिक्य		—	माणक	(गु० माणक)
जन	(प्रा० जण)	—	ज्ोण	(गु० जण)
जनयति	(प्रा० जणइ)	—	जणँ	(गु० जणे)
खनति	(प्रा० खणइ)	—	खणँ	(गु० खणे)
खनि	(प्रा० खणी)	—	खाण	(गु० खाण)
तानयति	(प्रा० ताणइ)	—	ताणँ	(गु० ताणे)
वनि	(प्रा० वणी)	—	वणि	(गु० वणी)

घन	(प्रा० घण)	—	गणु	(गु० घणुं)
उन	(प्रा० उण)	—	ओणुं	(गु० उणुं)
पानीय	(प्रा० पाणीअ)	—	पाणि	(गु० पाणी)
व्याख्यान	(प्रा० वक्खाण)	—	वकेंण	(गु० वखाण)
अंगन	(प्रा० अंगण)	—	आँगणु	(गु० आंगणुं)

२. न का विकास

न—आभाआ के **न** एवं मभाआ के **न्न** द्वारा 'नकार' वागड़ी में आया है और आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर आता है। मभाआ में **ण्ण** का जो संयोग तैयार होता था उसके स्थान पर प्रायः अर्धमागधी एवं जैन महाराष्ट्री में **न्न** आता था। इसने गुजराती, वागड़ी आदि में न का विकास दिया है।

राणी जैसा कोई ही अपवाद है जिसमें **ण** बच गया है।

	नव		—	नवु	(गु० नवुं)
	नष्ट		—	नाटु	(गु० नाठुं)
	निश्वास	(प्रा० नीसास)	—	नेंयो	(गु० निसासो)
	नवति		—	नेंवु	(गु० नेंवुं)
	नकुल		—	नोळियु	(गु० नोळियुं)
	नृत्य		—	नास	(गु० नाच)
न्न—	ननान्दा	(प्रा० नणन्दा)	—	नणद	(गु० नणंद)
	कर्ण	(प्रा० कण्ण)	—	कान	(गु० कान)
	पर्ण	(प्रा० पण्ण)	—	पान	(गु० पान)
	शून्य	(प्रा० सुन्न)	—	सूनु	(गु० सूनूं)
	धान्य	(प्रा० धन्न)	—	धान	(गु० धान)
	मन्यते	(प्रा० मन्नै)	—	मानें	(गु० माने)
	पुण्य	(प्रा० पुन्न)	—	पुन	(गु० पून)
	यज्ञोपवित	(प्रा० जन्नोवइअ)	—	जनोइ	(गु० जनोई)
	उर्ण	(प्रा० उन्न)	—	ओन	(गु० उन)
	जुर्ण	(प्रा० जुन्न)	—	जूनु	(गु० जूनुं)
	चूर्ण	(प्रा० चुन्न)	—	सुनो	(गु० चूनो)

नज़र (अर०) नकल (अर०), नमूनो (फा० नमूनह) आदि उधार लिये हुए शब्दों में "न" सुरक्षित है।

३ म का विकास

म—आभाआ के **म** और मभाआ के **म्म** से यह वर्ण वागड़ी में उतर आया है। यह आदि, मध्य और अन्त तीनों में प्रयुक्त होता है।

मार्ग		—	माग	(गु० माग)
मक्षिका		—	माकि	(गु० माखी)
मस्तक		—	मातु	(गु० माथुं)
मृष्ट		—	मेट्टु	(गु० मीठुं)
मिष्ट		—	मेट्टु	(गु० मीठुं)
मर्		—	मरवु	(गु० मरवुं)
मार्जति		—	माज़ॅ	(गु० माजे)
मत्त		—	म़ातु	(गु० मातुं)
जमति		—	ज़मॅं	(गु० जमे)
क्षमते		—	खमॅं	(गु० खमे)
सीमा		—	स़ेम	(गु० सीम)
नमति		—	नमॅं	(गु० नमे)
भ्रमर		—	भमरो	(गु० भमरो)
ग्राम		—	गाम	(गु० गाम)
उद्धमन		—	उगमणु	(गु० उगमणुं)
प्राप्नोति	(प्रा० पम्मइ)	—	पामॅं	(गु० पामे)
चर्म	(प्रा० चम्म)	—	सामडु	(गु० चामडुं)
कर्म	(प्रा० कम्म)	—	काम	(गु० काम)
गुल्म	(प्रा० गुम्म)	—	गुोमडु	(गु० गूमडुं)
कदम्ब	(प्रा० कदम्म)	—	कदम	(गु० कदम)
श्मशान	(प्रा० मसाण)	—	माणँ	(गु० मसाण)

मज़रे (अर० मज़रेह), मकम (अर० मकाम), मुसरमन (अर० मुसलमान) आदि उधार लिये हुए शब्दों में "म" सुरक्षित है।

पार्श्विक

१. ल का विकास

ल—आभाआ के ल-ल्ल और मभाआ के ल्ल के विकास में यह वर्ण वागड़ी को प्राप्त हुआ है। और आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में आता है। जैसे कि—

लज्जा	—	लाज़	(गु० लाज)
लक्ष	—	लाक	(गु० लाख)
लिम्पति	—	लेपवु	(गु० लींपवुं)
लम्ब	—	लाँवु	(गु० लाँवुं)
लशुन	—	लसण	(गु० लसण)
लंचा	—	लाँस	(गु० लांच)

कल्य	(प्रा० कल्ल)	—	कालँ	(गु० काल)
मूल्य	(प्रा० मूल्ला)	—	मुल	(गु० मूल)
तेल	(प्रा० तल्ल)	—	तेल	(गु० तेल)
पर्याण	(प्रा० पल्लाण)	—	पलँण	(गु० पलाण)
दुर्लभ	(प्रा० दुल्लह)	—	दलम	(गु० दोहलुं)
फुल्ल		—	फुल	(गु० फूल)
उल्ललति	(प्रा० उल्ललइ)	—	उलळँ	(गु० उलळे)
	(प्रा० गल्ल	—	गालियो	(गु० गाल)
भिल्ल		—	भिल	(गु० भील)
झल्लरी		—	ज़ालँर	(गु० झालर)

रेल (अं०), अकल (अर० अक्लि), आदि उधार लिये हुए शब्दों में "ल" सुरक्षित है।

लुंठित

१. र का विकास

र—आभाआ और मभाआ के र से वागड़ी का र उतर आया है। यह आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में आता है। जैसे कि—

रात्रि		—	रातर	(गु० रात)
राजिका		—	राइ	(गु० राई)
राज्य		—	राज़	(गु० राज)
रोदिति		—	रोवँ	(गु० रूए)
रंधयति		—	राँदँ	(गु० रांधे)
रंक		—	राँक	(गु० रांक)
रंडा		—	राँड	(गु० रांड)
बदर		—	बोरँ	(गु० बोर)
द्वादश	(प्रा० बार)	—	बार	(गु० बार)
सप्तति	(प्रा० सत्तरि)	—	सित्तँर	(गु० सित्तेर)
गृह	(प्रा० घर)	—	गा॒ँर	(गु० घर)

रेल (अं०), रैस (अर. रईस), रोज़ (अर.) आदि उधार लिये हुए शब्दों में "र" सुरक्षित है।

उत्क्षिप्त

१. ड़ का विकास

ड़—आभाआ के मूल द्विश्रुति मध्य गति (intervocalic) असंयुक्त ड और मभाआ के वैसे ही मूल ड एवं ट पर से विकसित ड वागड़ी में उत्क्षिप्त ढ़ के रूप में उच्चरित होता है और मध्य और अन्त में आता है। जैसे कि—

दाडिम		—	दाड़म	(गु० दाडम)
चूड		—	सुड़ो	(गु० चूडो)
खडी		—	खड़ि	(गु० खडी)
घटयति	(प्रा० घडई)	—	गड़ँ	(गु० घडे)
घोटक	(प्रा० घोडग्र)	—	ग़ोड़ो	(गु० घोडो)
कटि	(प्रा० कडी)	—	कँड़	(गु० केड, कड)
पतति	(प्रा० पडइ)	—	पड़ँ	(गु० पडे)
पाटक	(प्रा० पाडग्र)	—	वाड़ो	(गु० वाडो)
संकट	(प्रा० संकड)	—	साँकडु	(गु० सांकडु)
शटति	(प्रा० सडइ)	—	सड़ँ	(गु० सडे)
प्रतिपद	(प्रा० पडिव)	—	पड़वु	(गु० पडवो)
कटुक	(प्रा० कडुग्र)	—	कडुवु	(गु० कड़वुं)
वट	(प्रा० वड)	—	वोड़ो	(गु० वड)
कीट	(प्रा० कीड)	—	किड़ो	(गु० कीडो)

२. ळ का विकास

ळ—ग्राभाग्रा ग्रौर मभाग्रा के द्विश्रुति मध्यगत (inter-vocalic) ग्रसंयुक्त ल के स्थान में यह उत्क्षिप्त ळ वागड़ी में उच्चरित होता है। यह मध्य ग्रौर ग्रन्त में ही प्रयुक्त होता है। जैसा कि—

काल		—	काळ	(गु० काळ)
फल		--	फळ	(गु० फळ)
वाल		—	वाळ	(गु० वाळ)
ग्रंगुली		—	ग्राँगळि	(गु० ग्रांगळी)
मूलक		—	मुळो	(गु० मूळो)
कज्जल		—	काजळ	(गु० ग्राळस)
ग्रालस		—	ग्राळस	(गु० ग्राळस)
हरिद्रा	(प्रा० हलिद्दा)	—	ग्रळदर	(गु० हळदर)
दरिद्र	(प्रा० दलिद्द)	—	दळिदर	(गु० दाळदर)
	(प्रा० ग्राल)	—	ग्राळ	(गु० ग्राळ)

ड—कभी ड के स्थान में ळ ग्राता है। जैसे कि—

गुड	—	गोळ	(गु० गोळ)
तडाग्र	—	तळाव	(गु० तळाव)
षोडश	—	स़ोँळ	(गु० सोळ)

वागड़ प्रदेश में खासकर के वनिये ग्रौर मुसलमान वोहरे इस 'ळ कार' के स्थान पर हमेंशा र का ही उच्चारण करते हैं।

ऊष्माक्षर

१. स का विकास

स—आभाआ के और मभाआ के च और छ के विकास में आने वाले च और छ का वागड़ी में स रूप होता है और वह आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में आता है। जैसे कि—

चम्पक		—	संपो	(गु० चंपो)
चर्वति		—	सावँ	(गु० चावे)
चतुष्क		—	साँक	(गु० चोक)
चूर्ण		—	सुनो	(गु० चूनो)
चञ्चु		—	साँस	(गु० चांच)
चिनोति		—	सणँ	(गु० चणे)
चुल्लि		—	सुलो	(गु० चूलो)
चर्मन्		—	सामडु	(गु० चामडुं)
चारयति		—	सारँ	(गु० चारे)
चूषति		—	सुवँ	(गु० चुसे)
चौर		—	सोर	(गु० चोर)
छादयति		—	साय	(गु० छाय)
छगण		—	साण	(गु० छाण)
छोटयति		—	सोड़ँ	(गु० छोडे)
छल		—	सळ	(गु० छळ)
	(प्रा० छिक्कार)	—	सेंकारू	(गु० छेंकारुं)
	(प्रा० छुच्छुन्दर)	—	ससोंदरु	(गु छछूंदर)
उच्च		—	ओंसु	(गु० उचुं)
उज्वाल		—	उसाळो	(गु० उचाळो)
पच		—	पाँस	(गु० पांच)
अंचल		—	आँसोळ	(गु० आंचळ)
लंचा		—	लाँस	(गु० लांच)
कंचुकी		—	काँसळि	(गु० कांचळी)
कंचिका		—	कोंसि	(गु० कुंची)
च्युत		—	सुवु	(गु० चूवुं)
नृत्य	(प्रा० नच्च)	—	नास	(गु० नाच)
सत्य	(प्रा० सच्च)	—	सास	(गु० साच)
अर्चिस्		—	आँस	(गु० आंच)
कूर्च		—	कुसो	(गु० कूचो)

पृच्छति		—	पुसेँ	(गु० पूछे)
पुच्छ		—	पोंसडु	(गु० पूंछडुं)
कक्ष	(प्रा० कच्छ)	—	कासड़ो	(गु० काछडो)
आश्चर्य	(प्रा० अच्छरिय)	—	असरत	(गु० अचरज)
पश्च	(प्रा० पच्छ)	—	पासु	(गु० पाछुं)
ऋक्ष	(प्रा० रिच्छ)	—	रेंस	(गु० रींछ)
क्षुर	(प्रा० छुर)	—	सरो	(गु० छरो)
वत्स	(प्रा० वच्छ)	—	वासरु	(गु० वाछरूं)
मत्स्य	(प्रा० मच्छ)	—	मासलु	(गु० माछलुं)
वृश्चिक	(प्रा० विच्छुअ)	—	वेसु	(गु० वींछी)

आभाआ के श, ष, स और मभाआ के स को बचा लेने का प्रयत्न भी वागड़ी में दीखता है और वहाँ स्पष्ट ऊष्माक्षर स का उच्चारण होता है। जैसे कि—

समय	—	समो
समाप्ति	—	समापति
सरस्वती	—	सरसति
स्वरूप	—	सरूप
शाकिनी	—	साकणि
शत्रु	—	सत्रु
शनि	—	सनि
शब्द	—	सबद
स्वभाव	—	सबाव
स्मरण	—	समरण

मेरे ख्याल से ये सभी अर्वाचीन तद्भव जैसे हैं। इसी तरह सड़क, सपाइ, सब, सपाटो, सबुरि, सरकु, सरकार, सरनानु, सरपाव, सरत, सरियँत, सलम, सवाल, आदि अरबी-फारसी और हिन्दी में से थोड़े विकार से उधार लिये शब्दों में यह स्थिति है।

महाप्राण

१. स़ का विकास

स़—आभाआ के श, ष, स और मभाआ के विकास में आने वाला 'सकार' का उच्चारण वागड़ी में स़ होता है और वह आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर आता है। जैसे कि—

शब्द	—	स़ाद	(गु० साद)
शून्य	—	स़ोनु	(गु० सूनुं)

शुष्क		—	स़ुकु	(गु० सूकुं)
षंढ		—	स़ाँड	(गु० सांढ)
षष्टि		—	स़ाट	(गु० साठ)
सार्थ		—	स़ात	(गु० साथ)
सप्त		—	स़ात	(गु० सात)
सीमा		—	स़ेँम	(गु० सीम)
श्याल	(प्रा० साल)	—	स़ाळो	(गु० साळो)
श्वास	(प्रा० सास)	—	स़ा	(गु० सास)
स्वस्तिक	(प्रा० सथ्थिअ)	—	स़ाँतियो	(गु० साथियो)
वंश		—	वँस	(गु० वंश)

छ=स़ -पाली "अच्छति"-प्रा० अच्छइ के विकास में गुजराती में "छ" वाले रूप प्रयुक्त होते हैं। बागड़ी में वैसे रूपों में स़ उच्चरित होता है। जो हिन्दी समूह की भाषाओं में होने वाले ह वाले रूपों का मध्यवर्ती जैसा रूप लगता है। मारवाड़ी में भी स़ वाले रूप व्यापक हैं।

आगे रूप प्रक्रिया में अस्तित्ववाचक स़ (गु० छ) अंग के रूपाख्यानों में यह बात स्पष्ट है। जैसे कि—

स़ुं (गु० छुं), स़ै (गु० छीए), स़ै (गु० छे), स़ा (गु० छो), स़ै (गु० छे)—ये पाँच रूप।

स़ का लोप

शब्दों के अन्त में जब स़ शांत (silent) 'अ वाला' होता है तब इस 'स़कार' का लोप होता है। जैसे कि—

रि	=	रीस	(रिष)
वि	=	वीस	(विंशती)
तरि	=	त्रीस	(त्रिंशती)

वर	—	गु० वरस	(सं० वर्ष)
तर	—	गु० तरस	(सं० तृषा)
वे	—	गु० वेश	(सं० वेश)
सा	—	गु० सास	(सं० श्वास)
वाँड़ो	—	गु० वांसडो	(सं० वंश)
स़ारो	—	गु० ससरो	(सं० श्वशुर)

इतर स्वर वाले 'स़कार' का भी लोप दीखता है। जैसे कि—

कांउ	—	गु० कांसुं	(सं० कांस्य)
नेयो	—	गु० निसासो	(सं० निःश्वास)

साउ — गु० सासु (सं० श्वश्रू)
सारि — गु० सासरी (सं० श्वशुर)

वर्तमान काल के रूपाख्यानों में सहायकारी रूपों में "स्" क्रिया रूपों का जब उपयोग होता है तब, एवं भविष्य काल के रूपों में प्रत्ययात्मक स् का लोप वागड़ी उच्चारण में व्याप्त है। जैसे कि—

करों (गु० करुं छुं)
करें (गु० करीए छीए)
करें (गु० करे छे)
करा (गु० करो छो)
करें (गु० करे छे)

अर्ध स्वर

१. य् का विकास

य्—मभाआ में जो 'यश्रुति' प्रयुक्त होती थी उसी प्रकार का यह उच्चारण है और खास करके मध्य और अन्त में आता है। वागड़ी में यह "इ" के विकास में निष्पन्न है।

याति	(प्रा० जाइ)	—	जाय्	(गु० जाय)
खादति	(प्रा० खाअइ)	—	खाय्	(गु० खाय)
कृत	(प्रा० करिअ)	—	कर्यु	(गु० कर्युं)
मृत	(प्रा० मरिअ)	—	मर्यु	(गु० मर्युं)

यों आकारान्त क्रिया रूपों में एवं भूत कृदन्त में 'यश्रुति' दिखाई देती है। क्वचित् मभाआ की परम्परा में भी यह श्रुति आती है। जैसे कि—

पिबति (प्रा० पिअइ, पियइ) — पियॅ (गु० पीए)

इसके सादृश्याभास में निम्न हैं—

बिभेति (प्रा० बिहइ) — बियॅ (गु० बीए)

आभाआ के तद्धित प्रत्यय इक से निकला हुआ एवं इसके सादृश्याभास से होने वाला इय प्रत्यय जहाँ जहाँ आता है वहाँ 'यश्रुति' स्पष्ट है। जैसे कि—

रसिक (प्रा० रसिय) — रसियो (गु० रसियो)

इसके आभास साम्य वाले

मरणियो (गु० मरणियो)
दुदियॅ (गु० दुवियुं)
घोळियॅ (गु० वोळियुं)
काळियॅ (गु० काळियुं)
फाळियॅ (गु० फाळियुं)
कॅड़ियॅ (गु० केडियुं)

२. व का विकास

व—आभाआ के व एवं मभाआ के विकसित व पर से वागड़ी का व उतर आया है और वह आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में आता है। जैसे कि—

वार्ता		—	वात	(गु० वात)
विद्युत		—	विज़ळि	(गु० वीजळी)
वालुका		—	वेऴु	(गु० वेऴु)
वधू		—	वौ	(गु० वहु)
वापि		—	वाव	(गु० वाव)
वाद्य		—	वाज़ु	(गु० वाजुं)
व्याघ्र	(प्रा० वग्घ)	—	वाग	(गु० वाघ)
चर्वति	(प्रा० चव्वइ)	—	सावँ	(गु० चावे)
वापयति	(प्रा० वावइ)	—	वावँ	(गु० वावे)
तापयति	(प्रा० तावइ)	—	तावँ	(गु० तावे)
दीप	(प्रा० दीव)	—	दिवो	(गु० दीवो)
गोपाल	(प्रा० गोवाल)	—	गुोंवाळ	(गु० गोवाळ)

वकिल (अर० वक़ील), वसिलो (अर० वसील) आदि उधार लिये शब्दों में "व" सुरक्षित है।

पूर्व पर वर्ण साहृश्य (Assimilation)

आभाआ और मभाआ से नभाआ भाषाओं और बोलियों तक आते हैं तब पूर्व पर वर्ण साहृश्य सिद्धान्त बहुत काम कर रहा है। मभाआ (पालि-प्राकृतों में) वह पूर्व स्वरूप में व्यापक बन गया था। उसमें विशिष्ट नियम भी काम करते थे। व्यंजन-समूहों में पूर्ण व्यस्त ध्वनि (explosive) अपूर्ण व्यक्त (implosive) ध्वनि को खा जाता था, जैसे कि—सं० मत्कुण—प्रा० मक्कुण यहाँ "त" को खा गया है। इसमें पद्धति यही रही है कि उत्तर का व्यंजन पूर्व व्यंजन को खा जाता है और 'रकार' के विषय में ऐसा हुआ है कि वह जहाँ है वहाँ उसने अपना रूप खो दिया है और पूर्व या उत्तर वर्ण में छिप गया है। जैसे कि—

सं० वक्र	—	प्रा० वक्क
सं० शर्करा	—	प्रा० सक्करा

यह सिद्धान्त निम्न प्रकारों से मभाआ द्वारा वागड़ी में आया है। जहाँ संयुक्ताक्षरता नष्ट हो गई है और स्वराघात माँगता हो तो पूर्व-स्वर दीर्घ हो जाता है। जैसे कि—

सं० मत्कुण	—	प्रा० मक्कुण	—	वाग० माकोंण
सं० शर्करा	—	प्रा० सक्करा	—	वाग० साकोर

(१) स्पर्श व्यंजन *स्पर्श व्यंजन
(२) स्पर्श व्यंजन *अनुनासिक व्यंजन
(३) य् वाले समूह
(४) र् वाले समूह
(५) ल् वाले समूह
(६) व् वाले समूह
(७) उष्माक्षर वाले समूह

१. स्पर्श व्यंजन + स्पर्श व्यंजन

१. समान वर्ण

क्क—सं० कुक्कुटी	—	कुकड़ि	(गु० कूकडी)
सं० हिक्का	—	इक	(गु० हीक)
च्च—सं० उच्चाल	—	उसाळो	(गु० उचाळो)
सं० खिच्चा	—	खिसड़ि	(गु० खीचडी)
च्छ—सं० पृच्छति	—	पुसँ	(गु० पूछे)
ज्ज—सं० लज्जा	—	लाज़	(गु० लाज)
सं० कज्जल	—	काज़ळ	(गु० काजळ)
ट्ट—सं० अट्ट	—	आटो	(गु० आटो)
सं० पट्ट	—	पाट	(गु० पाट)
ट्ठ—सं० उत्थित	—	उटवु	(गु० उठवुं)
ड्ड—सं० उड्डयति	—	उडँ	(गु० उडे)
प्रा० पड्ड	—	पाडो	(गु० पाडो)
त्त—सं० मत्त	—	मातु	(गु० मातुं)
सं० तित्तिर	—	तेतरो	(गु० तेतर)
द्द—सं० कुद्दाल	—	कोदाळो	(गु० कोदाळो)
प्प—सं० पिप्पल	—	पिपळो	(गु० पीपळो)

२. असमान वर्ण

त्क—सं० मत्कुण	(प्रा० मक्कुण)	—	माकोंण	(गु० मांकड)
सं० उत्कर	(प्रा० उक्कर)	—	अकुड़ो	(गु० उकरडो)
त्ख—सं० उत्खनिका	(प्रा० उक्खणिआ)	—	उकळि	(गु० उखळी)
द्ग—सं० उद्गमन	(प्रा० उग्गमन)	—	उगमणु	(गु० उगमणुं)
सं० मुग्दर	(प्रा० मुग्गर)	—	मोगरि	(गु० मोगरी)
द्घ—सं० उद्घटति	(प्रा० उग्घडइ)	—	उगड़ँ	(गु० उघडे)

क्त—	सं० रक्त	(प्रा० रत्त)	—	रातु	(गु० रातु)
	सं० मौक्तिक	(प्रा० मोत्तिय)	—	मोति	(गु० मोती)
प्त—	सं० सप्त	(प्रा० सत्त)	—	सात	(गु० सात)
	सं० सुप्त	(प्रा० सुत्त)	—	सूतो	(गु० सूतो)
ब्द—	सं० शब्द	(प्रा० सद्द)	—	साद	(गु० साद)
ग्ध—	सं० दुग्ध	(प्रा० दुद्ध)	—	दुद	(गु० दूध)
त्प—	सं० उत्पद्यते	(प्रा० उप्पज्जइ)	—	उपजॅ	(गु० ऊपजे)
	सं० उत्पतति	(प्रा० उप्पडइ)	—	उपड़ॅ	(गु० ऊपडे)
द्भ—	सं० उद्भूर	(प्रा० उब्भर)	—	उवरो	(गु० ऊभरो)

जहाँ संयोग असमान व्यंजनों का है वहाँ मभाआ में इस सिद्धांत से समान वर्णता आती है और विकास आगे बढ़ता है।

२. (अ) स्पर्श व्यंजन + अनुनासिक व्यंजन

ग्न—	सं० नग्न	(प्रा० नग्ग)	—	नागो	(गु० नागो)
	सं० अग्नि	(प्रा० अग्गि)	—	आग	(गु० आग)
ज्ञ—	सं० राज्ञी	(प्रा० राण्णी)	—	राणि	(गु० राणी)
	सं० यज्ञोपवीत	(प्रा० जन्नोअईअ)	—	जनुोइ	(गु० जनोई)
त्म—	सं० आत्मा	(प्रा० अप्पा)	—	आप	(गु० आप)
प्न—	सं० प्राप्नोति	(प्रा० पम्मइ)	—	पामॅ	(गु० पामे)
न्न—	सं० छन्न		—	सानु	(गु० छानुं)
	सं० भिन्न		—	भेनुं	(गु० भीनुं)

(आ) अनुनासिक व्यंजन + स्पर्श व्यंजन

ङ्क—	सं० अङ्क	—	आँकड़ो	(गु० आंकडो)
	सं० रङ्क	—	राँक	(गु० रांक)
ङ्ख—	सं० शृङ्खला	—	साँकॅळ	(गु० सांकळ)
ङ्ग—	सं० अङ्गन	—	आँगणु	(गु० आंगणुं)
	सं० अङ्गुलि	—	आंगळि	(गु० आंगळी)
ङ्घ—	सं० उल्लङ्घति	—	अलोंडे	(गु० ओळंगे)
	सं० लङ्घति	—	लांगॅ	(गु० लांघे)
ञ्च—	सं० पञ्च	—	पाँस	(गु० पांच)
	सं० चञ्चु	—	साँस	(गु० चांच)

ञ्ज—सं० अञ्जन	—	आँज्णि	(गु० आंजणी)
सं० पञ्जर	—	पाँज्रु	(गु० पांजरूं)
ण्ट —सं० कण्टक	—	काँटो	(गु० कांटो)
सं० घुण्टिका	—	गुँटि	(गु० घूंटी)
ण्ठ -सं० शुण्ठि	—	सुँट	(गु० सूंठ)
ण्ड —सं० दण्ड	—	डाँडो	(गु० डांडो, दांडो)
सं० खण्डते	—	खाँडै	(गु० खांडे)
न्त—सं० दन्त	—	दाँत	(गु० दांत)
सं० तन्तु	—	ताँतणो	(गु० तांतणो)
न्द—सं० कन्द	—	काँदो	(गु० कांदो)
सं० सिन्दूर	—	सँदुर	(गु० सींदूर)
न्ध—सं० अन्ध	—	आँदु	(गु० आंधळूं)
सं० स्कन्ध	—	खाँद	(गु० खांध)
म्प —सं० कम्पते	—	काँपे	(गु० कांपे)
म्ब—सं० लम्ब	—	लाँबु	(गु० लांबुं)
सं० जम्बू	—	जाँबु	(गु० जांबुं)
म्भ —सं० कुम्भकार	—	कुँवार	(गु० कुंभार)

(इ) अनुस्वार + उष्माक्षर

सं० संशय	—	साँसो	(गु० सांसो)
सं० वंश	—	वाँड़ो	(गु० वांसडो)
सं० कांस्य	—	काँउ	(गु० कांसुं)

एक बात यहाँ स्पष्ट होती है कि पूर्व स्वर अकार होता है तब तो 'आ' होता है, किन्तु जब दूसरे स्वर आते हैं तो वागड़ी में स्वर ह्रस्व ही उच्चरित होता है। किन्तु उभय प्रकार के स्वर सानुनासिक बन रहते हैं।

उष्माक्षरों के विषय में यह स्पष्ट है कि जहाँ तक स का दँत्य उच्चारण बच रहता है वहाँ तक तो वह जीवित रहता है किन्तु वह महाप्राण "स्" के रूप में परिणत होता है तब वह समग्रतया लुप्त हो जाता है। देखो उपर वाँड़ो, काँउ,

३. य वाले समूह

य के संयोग में पूर्व व्यंजन सादृश्य हो जाता है। जैसे कि—

क्य—सं० शीक्य	(प्रा० सिक्क)	—	सिकु	(गु० सींकुं)
ख्य—सं० व्याख्यान	(प्रा० वक्खाण)	—	वकँण	(गु० वखाण)

ग्य—सं० लग्यति	(प्रा० लग्गइ)	—	लागँ	(गु० लागे)
सं० योग्य	(प्रा० जोग्ग)	—	ज़ोगु	(गु० जोगुं)
च्य—सं० च्युत	(प्रा० चुअ)	—	सुवु	(गु० चूवुं)
सं० रच्यते	(प्रा० रच्चइ)	—	रासँ	(गु० राचे)
ज्य—सं० राज्य	(प्रा० रज्ज)	—	राज़	(गु० राज)
सं० ज्येष्ठ	(प्रा० जेट्ठ)	—	ज़ेट	(गु० जेठ)
ट्य—सं० त्रुटयति	(प्रा० तुट्टइ)	—	टुटँ	(गु० तूटे/टूटे)
सं० स्फुट्यते	(प्रा० फुट्टइ)	—	फुटँ	(गु० फूटे)
ड्य—सं० जाड्य	(प्रा० जड्ड)	—	जाड्डु	(गु० जाडुं)
प्य—सं० रौप्य	(प्रा० रोप्प)	—	रुपियो	(गु० रूपियो)
सं० क्षिप्य	(प्रा० खेप्प)	—	खँप	(गु० खेप)
त्य—सं० सत्य	(प्रा० सच्च)	—	सास	(गु० साच)
सं० नृत्य	(प्रा० नच्च)	—	नास	(गु० नाच)
द्य—सं० खाद्य	(प्रा० खज्ज)	—	खाजु	(गु० खाजुं)
सं० वाद्य	(प्रा० वज्ज)	—	वाजु	(गु० वाजुं)
ध्य—सं० सध्या	(प्रा० संज्झा)	—	साँज़	(गु० सांझ)
सं० वंध्या	(प्रा० वंज्झा)	—	वांज़वि	(गु० वांझ)
ण्य—सं० पुण्य	(प्रा० पुन्न)	—	पुन	(गु० पून)
न्य—सं० धान्य	(प्रा० धन्न)	—	धान	(गु० धान)
सं० मन्यते	(प्रा० मन्नइ)	—	मानँ	(गु० माने)
ल्य—सं० मूल्य	(प्रा० मुल्ल)	—	मुल	(गु० मूल)
सं० कल्य	(प्रा० कल्ल)	—	कालँ	(गु० काल)
व्य—सं० सीव्यते	(प्रा० सिव्वइ)	—	सिवँ	(गु० सीवे)
सं० व्याघ्र	(प्रा० वग्घ)	—	वाग	(गु० वाघ)
श्य—सं० नश्य	(प्रा० नस्स)	—	नावु	(गु० नासवुं)
फ० श्याल	(प्रा० साल्ल)	—	साळो	(गु० साळो)
ष्य—सं० करिष्यति	(प्रा० करिस्सइ)	—	करसँ	(गु० करशे)
त्स्य—सं० मत्स्य	(प्रा० मच्छ)	—	मासलु	(गु० माछलुं)
र्य—सं० कार्य	(प्रा० कज्ज)	—	काज़	(गु० काज)
ह्य—सं० दुह्यते	(प्रा० दुज्झइ)	—	दुजँ	(गु० दूझे)
सं० मुह्यति	(प्रा० मुज्झइ)	—	मोजाय	(गु० मूंझाय)
य्य—सं० शय्या	(प्रा० सेज्जा)	—	सँज़	(गु० सेज)

४. र वाले समूह

क्र—	सं० चक्र	(प्रा० चक्क)	—	साकड़ो	(गु० चाकडो)
	सं० वक्र	(प्रा० वंक्क)	—	वाँकु	(गु० वांकुं)
र्क—	सं० मर्कट	(प्रा० मक्कड)	—	माकडु	(गु० माकडुं)
	सं० अर्क	(प्रा० अक्क)	—	आकोड़ियो	(गु० आकडो)
ग्र—	सं० जाग्र	(प्रा० जग्ग)	—	ज़ागवु	(गु० जागवुं)
	सं० ग्राम	(प्रा० गाम)	—	गाम	(गु० गाम)
र्ग—	सं० मार्गशिर	(प्रा० मग्गसिर)	—	मकसर	(गु० मागसर)
	सं० मार्ग	(प्रा० मग्ग)	—	माग	(गु० माग)
घ्र—	सं० व्याघ्र	(प्रा० वग्घ)	—	वाग	(गु० वाघ)
र्घ—	सं० समर्घ	(प्रा० समग्घ)	—	स़ुंगु	(गु० सोंघुं)
	सं० महार्घ	(प्रा० महग्घ)	—	मोगु	(गु० मोंघुं)
र्च—	सं० अर्चिस्	(प्रा० अच्चि)	—	आँस	(गु० आंच)
	सं० कूर्च	(प्रा० कुच्च)	—	कुसो	(गु० कूचो)
र्ज—	सं० गर्जति	(प्रा० गज्जइ)	—	गाज़े	(गु० गाजे)
	सं० भ्रातुर्जाया	(प्रा० भाउज्जाया)	—	भोज़ाइ	(गु० भोजाई)
प्र—	सं० प्रस्तरति	(प्रा० पत्थरइ)	—	पातरे	(गु० पाथरे)
	सं० प्रक्षालयति	(प्रा० पक्खालइ)	—	पकाळे	(गु० पखाळे)
र्प—	सं० सर्प	(प्रा० सप्प)	—	स़ाप	(गु० सांप)
	सं० पर्पट	(प्रा० पप्पड)	—	पापड़े	(गु० पापड)
र्ब—	सं० दुर्बल	(प्रा० दुव्वल)	—	दुवळु	(गु० दूवळुं)
	सं० कर्बुर	(प्रा० कव्वुर)	—	कावरु	(गु० कावरूं)
भ्र—	सं० अभ्र	(प्रा० अब्भ)	—	आव	(गु० आभ)
	सं० भ्रमति	(प्रा० भमइ)	—	भमे	(गु० भमे)
र्भ—	सं० गर्भ	(प्रा० गब्भ)	—	गाव	(गु० गाभ)
	सं० दर्भ	(प्रा० दब्भ)	—	डावड़ो	(गु० डाभ)
त्र—	सं० सूत्रधार	(प्रा० सुत्तहार)	—	स़ुतार	(गु० सुथार)
	सं० सुपुत्र	(प्रा० सुपुत्त)	—	स़पुत	(गु० सपूत)
र्त—	सं० कर्तरी	(प्रा० कत्तरी)	—	कातरे	(गु० कातर)
	सं० वार्ता	(प्रा० वत्ता)	—	वात	(गु० वात)
र्थ—	सं० चतुर्थ	(प्रा० चउत्थ)	—	सोतु	(गु० चोथुं)
र्द—	सं० अर्द्र	(प्रा० अद्द)	—	आदु	(गु० आदु)
	सं० पर्दते	(प्रा० पद्दइ)	—	पादे	(गु० पादे)

र्ध—सं० वर्धते	(प्रा० वड्ढइ)	—	वदँ	(गु० वधे)
र्ण—सं० कर्ण	(प्रा० कन्न)	—	कान	(गु० कान)
सं० उर्ण	(प्रा० उन्न)	—	ओन	(गु० उन)
र्म—सं० चर्मन्	(प्रा० चम्म)	—	सामड़ु	(गु० चामडुं)
सं० कर्मन्	(प्रा० कम्म)	—	काम	(गु० काम)
म्र—सं० आम्र	(प्रा० अम्ब)	—	आंबो	(गु० आंबो)
सं० ताम्र	(प्रा० तम्ब)	—	ताँबु	(गु० तांबुं)
र्य—सं० कार्य	(प्रा० कज्ज)	—	काज्	(गु० काज)
सं० दुर्लभ	(प्रा० दुल्लह)	—	दलम	(गु० दोहलुं)
र्व—सं० चर्वति	(प्रा० चव्वइ)	—	सावँ	(गु० चावे)
श्र—सं० श्वश्रू	(प्रा० सस्सु)	—	साउ	(गु० सासु)
र्श—सं० पार्श्व	(प्रा० पस्स)	—	पाए	(गु० पासे)

५. ल वाले समूह

ल्ग—सं० फाल्गुन	(प्रा० फग्गुरण)	—	फागरण	(गु० फागरण)

ल्य और र्ल के लिये ऊपर यथा स्थान दिया गया है।

ल्व—स० बिल्व	(प्रा० बिल्ल)	—	बिलु	(गु० बीलुं)
ल्ल—सं० फुल्ल	(प्रा० —)	—	फुल	(गु० फूल)
सं० गल्ल		—	गालियो	(गु०.गाल)

६. व वाले समूह

क्व—सं० पक्व	(प्रा० पक्क)	—	पाकु	(गु० पाकुं)
ज्व—सं० उज्ज्वल	(प्रा० उज्जल)	—	उजळु	(गु० उजळुं)
ट्व—सं० खट्व	(प्रा० खट्टा)	—	खाट	(गु० खाट)
ण्व—सं० ण्वन	(प्रा० पण)	—	पगु	(गु० पगु)
द्व—सं० द्वार	(प्रा० बार)	—	बाण्णु	(गु० बारणु)
सं० द्वादश	(प्रा० बारह)	—	बार	(गु० बार)

"द्वि" के सम्बन्ध वाले सभी सख्यावाचक शब्दों में "ब" मिला है।

र्ध्व—सं० ऊर्ध्व	(प्रा० उब्भ)	—	उबु	(गु० उभुं)

"ल्व" का उल्लेख ऊपर यथास्थान हो गया है।

श्व—सं० पार्श्व	(प्रा० पस्स)	—	पाए	(गु० पास)
स० श्वास	(प्रा० सास)	—	सा	(गु० सास)
स्व—सं० स्वस्तिक	(प्रा० सत्थिअ)	—	साँतियो	(गु० साथियो)

"व्य" और "व" के बारे में ऊपर यथास्थान दिया गया है।

७. उष्माक्षर वाले समूह

(अ) उष्माक्षर + स्पर्श व्यंजन

श्च—सं० पश्च	(प्रा० पच्छ)	—	पसँ	(गु० पछी)
सं० वृश्चिक	(प्रा० विच्छुअ)	—	वेसु	(गु० वींछी)
ष्क—सं० शुष्क	(प्रा० सुक्ख)	—	स़ुकु	(गु० सूकुं)
ष्ट—सं० अष्ट	(प्रा० अट्ठ)	—	आट	(गु० आठ)
सं० मुष्टि	(प्रा० मुट्ठि)	—	मुंट	(गु० मूठी)
ष्ठ—सं० पृष्ठ	(प्रा० पुट्ठ)	—	पुट	(गु० पूंठ)
सं० कोष्ठ	(प्रा० कोट्ठ)	—	कुटो	(गु० कोठो)
स्क—सं० स्कंध	(प्रा० खंध)	—	खाँद	(गु० खांध)
स्त—सं० हस्त	(प्रा० हत्थ)	—	आत	(गु० हाथ)
सं० मस्तक	(प्रा० मत्थअ)	—	मातु	(गु० माथुं)
स्थ—सं० स्थान	(प्रा० थाण)	—	थाणु	(गु० थाणुं)
सं० स्थाली	(प्रा० थाली)	—	थाळि	(गु० थाळी)
स्प—सं० स्पंद	(प्रा० फंद)	—	फाँदो	(गु० फांदो)
स्फ—सं० स्फट्यते	(प्रा० फट्टइ)	—	फाटेँ	(गु० फाटे)
सं० फुट्यते	(प्रा० फुट्टइ)	—	फुटेँ	(गु० फूटे)

(आ) स्पर्श व्यंजन + उष्माक्षर

क्ष—सं० लिक्षा	(प्रा० लिक्खा)	—	लिक	(गु० लीख)
सं० लाक्षा	(प्रा० लक्खा)	—	लाक	(गु० लाख)
सं० क्षुर	(प्रा० छुर)	—	सरो	(गु० छरो)
सं० कक्ष	(प्रा० कच्छ)	—	कासड़ो	(गु० काछडो)

"क्ष" के यों दो प्रकार का विकास मिलता है।

त्स—सं० वत्स	(प्रा० वच्छ)	—	वासरु	(गु० वाछरू)
सं० मत्स्य	(प्रा० मच्छ)	—	मासलु	(गु० माछलुं)

(इ) उष्माक्षर + अनुनासिक

ष्ण—सं० उष्ण	(प्रा० उन्ह)	—	ओनु	(गु० ऊनुं)
स्न—सं० स्नाति	(प्रा० णाइ)	—	नाय़	(गु० नाहे)

(उ) उष्माक्षर + य, र, ल, व

के विषय में ऊपर यथास्थान निर्देश आ गया है।

व्यत्यय

वागड़ी में स्वरों और व्यंजनों के व्यत्य के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। मेरी नजर में निम्न हैं—

१. स्वर व्यत्यय

अएसियो, अळोसियो	—	गु० ओरसियो
अळुंडवु	—	गु० ओलंगवुं (सं० अवलङ्घ्)
अरेंडो	—	गु० एरंडो (सं० एरण्ड)
अटकांर	—	गु० ओडकार (सं० उकार)
अकुड़ो	—	गु० उकरडो (सं० उत्कर)
रको	—	गु० रोक

२. व्यंजन व्यत्यय

सपँ	—	गु० पशुओ	(सं० पशु)
मनाड़ि	—	सं० बिडाल	
नुसकण	—	अर० नुक्सान	
पलावु	—	गु० पवालु	

शब्दों के योग में संधि

मभाआ में द्विश्रुतिगत असंयुक्त एकाकी क ग च ज त द घ व आदि वर्णों के लोप के कारण स्वर एक दूसरे के सामने आ रहे थे, जैसे कि—

सं० कुंभकार—प्रा० कुंभआर, सं० तरति—प्रा० तरइ, सं० घोटक—प्रा० घोडओ, किन्तु जब नभाआ में वैसे स्थानों में स्वर सम्मिलित हो जाते हैं और वागड़ी में कुंवार, तरँ, गोड़ो के रूप में स्वरों की संधि हो जाती है। यह व्यापक रूप में बन चुका है और इसके उदाहरण काफी संख्या में इसके पूर्व आ जाते हैं।

व्यंजनों के विषय में पूर्व पर वर्ण साहश्य के विषय में इसके पूर्व ठीक ठीक कहा गया है। किन्तु वागड़ी में उच्चारण-लाघव का असर कुछ आगे भी बढ़ता है और निम्न प्रकार के उदाहरण मिलते हैं—

अप्पा	—	सं० उपवास	—	गु० अपवास
कण्णाँ	—	सं० किरणानि	—	गु० किरणो
गण्णु	—	सं० ग्रहणक	—	गु० घरेणुं
गण्णु	—	सं० गलनक	—	गु० गळणुं
पाण्णु	—	सं० पर्यंक	—	गु० पाळणुं
वाण्णु	—	सं० द्वार	—	गु० वारणुं

खास करके सामान्य कृदन्त के "वु" के पूर्व जब ओष्ठ स्थानीय व्यंजन आता है तब व की पूर्व सवर्णता बहुत स्वाभाविक है। जैसे कि—

काप्पु	—	गु० कापवुं
माप्पु	—	गु० मापवुं
साप्पु	—	गु० छापवुं
ताप्पु	—	गु० तापवुं
साँप्पु	—	गु० चांपवुं
होप्पु	—	गु० रोपवुं
स़ोंप्पु	—	गु० सोंपवुं
वाप्पु	—	गु० वाफवुं
दाव्वु	—	गु० दाववुं
गम्मु	—	गु० गमवुं
रम्मु	—	गु० रमवुं
भम्मु	—	गु० भमवुं
ज़म्मु	—	गु० जमवुं

वागड़ी और भीली के उच्चारणों का साम्य एवं वैषम्य

डूँगरपुर और वाँसवाड़ा जिलों का समग्र प्रदेश भीली प्रदेश है, इस विषय में कोई विसंवाद नहीं है। किन्तु उस प्रदेश में मात्र भीली प्रजा ही वसती है, ऐसा नहीं है। शायद ही कोई ऐसा गाँव हो, जहाँ उच्च वर्ण की प्रजा न हो। कारण स्पष्ट है कि भील प्रजा गाँवों में मिलकर प्रायः नहीं रहती है। जबकि भीलेतर प्रजा गाँवों में समूह में रहती है। गाँवों में भी भीलवाड़े हुए हैं, किन्तु इस प्रकार से गाँवों में वसने वाले भील लोग "सागड़ी" रहकर नौकरी या मजदूरी करते हैं जबकि जंगल में पालों में वसने वाले खेती के खुद मालिक भी हैं। यही कारण है कि पालों में वसने वाले भीलों की भाषा भीली संस्कार की परम्परा चालू रखती है जबकि गाँवों में वसने वाले भीलों की भाषा में दूसरे लोगों की भाषा का आदान प्रदान हुआ है। यह सर्वथा सत्य है कि दूसरे लोग वागड़ में वाहर से आकर वसे हैं और अपनी संस्कारी भाषा लाये है। जब मै वागड़ी की वात करता हूँ। तव दूसरे लोगों की जो भाषा गाँवों में आजीविका के लिए आये हुए भीलों के संपर्क से (आदान प्रदान से) खड़ी हुई है, उस भाषा की वात कर रहा हूँ।

स्वरों और व्यंजनों के भीली उच्चारण डॉ० ग्रियर्सन आदि ने निश्चित स्वरूप में देने का प्रयत्न किया है और आज हम सुन भी सकते हैं।

'अकार' का 'ओकार' बनना भीली में सामान्य गिना जाता है (ग्रियर्सन) —प्रबोध पंडित, गु० सं० मं० ४–२, पृष्ठ ६२। जैसे कि—

पोग (गु० पग), नोख (सं० नख), ज़ोव (गु० जव), ओळ (सं० हल, गु० हळ),

वागड़ी में भी 'ओकार' होना पाया जाता है। संस्कारी लोगों में भी 'ओकार' स्पष्ट है। जैसे कि—पोग (गु० पग), ग़ोर (गु० घर), ओ़ळ (गु० हळ), अटकुोंण (गु० अटकण), अदमुोण (गु० अधमण), अवुोकार (गु० आवकार), आँसोळ (गु० आंचळ), इयो़ळ (गु० ईयळ), उतोर (सं० उत्तर), कादोव (गु० कादव), कामुोण (गु० कामण), कमा॑ळ (गु० कमळ), गुोदवाड़ो (गु० गंदवाड़ो), ज़मुोण (गु० जमण), खापुोण (गु० खापण), भोव (सं० भव), दोव (सं० दव), माकुोंण (गु० माकड), मोद (गु० मध), मुोमत (गु० ममत), खाउकोड़ (गु० खाउकण), ज़ापुोटवु (गु० जापटवुं), तापुोड़वु (गु० त्रापडवुं), मोग (गु० मग)।

यहाँ ऐसा दीखता है कि नजदीक में ओष्ठय वर्ण, ड़, ळ, या ण का सम्पर्क कारणभूत है।

वागड़ी में जो चौड़े 'आ॑कार' का श्रवण होता है। वह भीली में नहीं है।

उदाहरणार्थ "ना॑ळियु" भीली में "नोळियुं" होता है। साबरकांठा की भींली में उत्तर गुजरात के पोणी, कोम, गोम जैसा 'अकार' का अनुनासिक व्यंजनों के पूर्व व्यापक 'ओ' होता है वह वागड़ी में नहीं है।

वागड़ी का विशिष्ट "अ़ो" मुझे निकट की किसी भीली में मालूम नहीं हुआ है। (डॉ० प्रबोध पंडित गु० सं० मं० ४–२, पृष्ठ ६२)

अनुनासिक के विषय में भी बहुत स्पष्ट है कि नपुंसक लिंग के उकारान्त बने हुए शब्दों में वागड़ी में अनुनासिकता है ही नहीं जबकि भीली में यह व्यापक है।

(डॉ० ग्रियर्सन Linguistic Survey of India, IX, 3, p. 12)

व्यंजनों के विषय में हम देखते हैं कि निकट की भीली वोलियों में च छ के स्थान में "स", और परम्परित 'स' के स्थान पर "स" हो जाना समान है। भीली का जो प्रधान लक्षण माना जाता है वह वर्गीय महाप्राण व्यंजनों के स्थान पर अल्पप्राण बन जाता—वह है। वागड़ी भी इस विषय में समानता रखती है, परन्तु

वह शब्दों के मध्य एवं अन्त के लिये है। शब्दारम्भ में बागडी महाप्राण वर्णों को बचा लेती है, अपवाद कहा जाय तो इतना ही है कि शब्दारम्भ में 'घ' का उच्चारण 'ग' और 'घ' के उच्चारण के बीच का अर्ध महाप्राण होता है। और नये उधार लिये शब्दों में तो 'घ' बच भी गया है (देखो ऊपर ग़ और घ का विकास)

रूपाख्यानों के विषय में जो अन्तर है वह आगे यथा स्थान दिया जायगा। यों भीली के साथ साम्य होते हुए भी जो वैषम्य प्राप्त होता है उसका कारण बाहर से पीढ़ियों से लोग बागड़ में आ बसे और गाँवों में भील आजीविका के लिये आ बसे उनका परस्पर जो आदान-प्रदान हुआ वह है। इसी कारण से मै बागड़ी को भीली और गुजराती के सेतु जैसी कहता हूँ। यह आगे रूपाख्यानों की तुलना से भी स्पष्ट हो जायगा।

तृतीय अध्याय

वागड़ी की रूप प्रक्रिया

वागड़ी बोली की रूप प्रक्रिया का विचार करते समय यह बात बहुत स्पष्ट है कि आदिम भारत आर्य भाषा भूमिका से जो प्रक्रिया संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और पुरानी गुजराती में उतरती चली आई है, वही है। शब्दों के उपयोग के बारे में एक बात अत्यन्त स्पष्ट है कि प्रचलित वागड़ी में तत्सम शब्दों का प्रयोग सामान्यतः बहुत कम है। साहित्यिक कृतियों की सामान्य जो कमी है वही इसका कारण है। हस्तलिखित ग्रन्थों में जो कुछ भी साहित्य मिलता है वह भजन साहित्य है और वह नित्य की बोलचाल की बोली में प्रायः है, अतः उसमें भी तत्सम शब्दों का प्रयोग विरल है। इससे एक सुविधा मिल जाती है कि वागड़ी भाषा का व्याकरण निश्चित करने में किसी पारम्परिक परवशता का खास योग नहीं आता है।

शब्दांग

उच्चारण की दृष्टि से देखा जाय तो वागड़ी में शब्द के अंग स्वरांत एवं व्यंजनांत भी दीख पड़ते है। व्यंजनांत कहने से मेरा आशय यह है कि हम लेखन में तो उन व्यंजनों में 'अकार' सम्मिलित करके लिखते हैं। यह 'अकार' इसीलिये शांत माना जाता है। गुजराती भाषा पर विचार करने वाले विद्वानो में से कुछ विद्वान इस अकार को लघु प्रयत्न भी मान रहे हैं। उच्चारण में मार्दव के कारण स्वर हीनता सर्वथा है, ऐसा कहने में संकोच होता है। तो भी इस विषय में मेरा कोई आग्रह नहीं है। यों स्वरों में आ इ उ ए और ओ शब्दांत में सुलभ हैं। उदाहरणार्थ– माँ (भिता नहीं), कुतरि, सपु (पशु), नँ (भय), सँ (चिता), लो (खुजली), आदि।

'एकार' 'ओकार' के जो भिन्न उच्चारण हैं वे शब्दो के अन्त में आते हैं।

ऐ और औ जिनके अन्त में हैं वैसे शब्द भी मिलते हैं। जैसे कि—गै (गई), वौ (बहू), आदि। यहाँ उच्चारण लाघव ही नियामक है और वह संधि स्वरात्मक स्वरूप में व्यक्त होता है।

अविकारी अगों के विषय मे ऊपर की परिस्थिति है। वागड़ी विकारी अंगों से हीन नहीं है और इस विषय मे गुजराती की समानता रखती है। पुल्लिंग में

'ओकारान्त' और नपुंसक लिंग में 'उकारान्त' अंग गुजराती के समान है। अन्तर इतना ही है कि नपुंसक लिंग में 'उकार' गुजराती चरोतरी बोली की तरह सर्वथा निरनुनासिक है। व्यापक भीली में तो गुजराती का ही साम्य है और 'उकार' सानुनासिक है।[1]

विकारी अंगों का स्त्री लिंग 'इकारान्त' है। उच्चारण से वह स्पष्ट ह्रस्व ही है। जैसे कि—कुतरि, गदेंड़ि, मनाड़ि।

लिंग

वागड़ी में तीनों लिंग मिलते हैं जो गुजराती में तथा व्यापक भीली में भी हैं। राजस्थानी में नपुंसक लिंग पहले था, परन्तु अब प्राय. नष्ट हो गया दीखता है।[2] अविकारी अंग वाले शब्दों के लिंग की पहचान आसपास के संयोग पर से ही होती है। यहाँ कहना हो तो ऐसा भी कह सकते हैं कि अविकारी अग वाले शब्दों के लिंग हों या न हों सब समान है। रूप रचना की दृष्टि से रूपों में कोई अन्तर पाया नहीं जाता है। जैसे कि—बाप खाय सँ, माँ खाय सँ, टाड वाय सँ, गुो सड़ँ सँ आदि।

विकारी विशेषण आदि के कारण ही इन शब्दों के लिंग का निश्चय होता है। जैकि कि—

मारो बाप, मारि माँ, आकरि टाड, नानि गुो

इस विषय में वागड़ी, व्यापक भीली और गुजराती में कोई प्रक्रिया भेद नहीं दीख पड़ता है।

अविकारी शब्दों की अपेक्षा विकारी अंग के शब्दों की वागड़ी में विपुलता है।

वचन

आदिम भारत आर्य भूमिका में और इससे निकली हुई संस्कृत भाषा में एक, द्वि, बहु ऐसे तीन वचन थे। किन्तु प्राकृतों के काल से द्वि वचन खो दिया और एक वचन तथा बहु वचन दो ही वचन बच रहे। आज समस्त भारत आर्य भाषाओं की यही स्थिति है। वागड़ी में बहु वचन बनाने के लिये प्रथमा विभक्ति में कोई चिन्ह अपेक्षित नहीं है और अविकारी अंग वाले शब्दों के लिंग की तरह आस-पास के संयोग पर से ही बहुवचन का ख्याल पाया जाता है, यथा—

वागड़ में भण्यें मनक थोड़ँ सँ

---

१. ग्रियर्सन ग्रन्थ ६ जिल्द ३, पृ० १२

२. ग्रियर्सन ग्रन्थ ६ जिल्द २, पृ० ५

में देखा है ।[१] डॉ० एस० के० चेटरजी का मंतव्य भी "कर्ण" शब्द का पोषक है ।[२] डॉ० तेस्सितोरी "नो" और "ने" को समानान्तर विकसित हुए कहते हैं। किन्तु संभावना तो यह है कि "नो" में सातवीं विभक्ति के "ए" प्रत्यय का सम्मिश्रण हुआ है ।[3] अर्थ की दृष्टि से यह असंभवित नहीं है । कर्म विभक्ति और संप्रदान विभक्ति में "ने" का प्रयोग गुजराती, भीली और वागड़ी में समान है। मालवी में 'के" का भी समानान्तर से प्रयोग सुलभ है, जबकि मारवाड़ी में तो 'ने" ही मिलता है ।

३. वति

यह परसर्ग गुजराती में भी व्यापक है । संभवतः यह संस्कृत "वर्त्मन्" शब्द से सम्बन्ध रखता है ।[४] इसके मूल के विषय में अब तक कोई अन्तिम निर्णय मालूम नहीं हुआ है । वागड़ में भीलों में भी "वति" सामान्य है ।

४. थकि

पुरानी गुजराती गद्य-पद्य और अर्वाचीन गुजराती पद्य में प्रयुक्त "थकी" परसर्ग से यह अलग नहीं है । अपादान के अर्थ से आगे बढ़कर इस परसर्ग ने "कर्ता" और "करण" का अर्थ भी गुजराती की तरह अपनाया है। गुजरात की पूर्वी-सीमा तथा उत्तर-सीमा के भीलों में भी "थकी" का प्रयोग बहुत सामान्य है। संस्कृत "स्थित" में से निकला हुआ "थी" परसर्ग इसके मूल मे होने की सम्पूर्ण सम्भावना है । "क" इसमें स्वार्थ में प्रयुक्त हुआ दीख पड़ता है। 'थिक्कइ" जैसा रूप मूल में होना सम्भव है । किन्तु निश्चित रूप से कहना कठिन है। डॉ० पिशल 'स्थक्यति" जैसे कृत्रिम रूप का[५] समादर करते हैं । तेस्सितोरी उनके आधार पर भूत कृदन्त के "थकिउ" रूप की कल्पना करके "थिकउ" द्वारा आना सम्भव गिनते हैं ।[६] वे "स्थितः" को भी निकाल नहीं देते हैं। मूल में 'थकउ" विकारक था और स्त्रीलिंग में "थकी" बनता था, इस पर से ही गुजराती "थी" की तरह "थकी" भी सर्व-सामान्य बन गया । भीली में, खास करके वागड़ में, थको, थकि, थकु तीनों लिंगों में लिंगवार युक्त होते हैं । इसका असर वागड़ी में भी है ।

---

१. तेस्सितोरी, खण्ड ७१

२. चेटरजी, Origin & development & Bengali Lang. p. 754

३. के० का० शास्त्री, गुजराती भाषा शास्त्र, पृ० ४७

४. के० का० शास्त्री, गुजराती भाषा शास्त्र, पृ० ३४

५. पिशल, खण्ड ४८८

६. तेस्सितोरी, खण्ड ७२–४

५. एयु

इसका विकास पुरानी पश्चिमी राजस्थानी में पाया जाता है, जहाँ "सिउ" (सं० सहितं) मिलता है।[१] "सकार" के लोप के साथ "इउ" प्रकृति से यह परसर्ग निकला है और इसमें कर्ता और कर्म का अर्थ भी विकसित हुआ है। वागड़ की भीली बोलियों में यह "यु" के रूप में मिलता है। सामान्य भीली में "सु" स्पष्ट है।

लिदेँ

यह गुजराती का "लीधे" है। और करण में है।

४. ने

संप्रदान में गुजराती की तरह ही यह व्यापक है। ऊपर स्पष्टता की गई है।

सा़रु

यह भी गुजराती के साथ साम्य रखता है। इसका विकास संस्कृत "सारकं" के साथ दीख पड़ता है। वागड़ की भीली में भी यह मिलता है।

वल्लेँ

यह मुझे मात्र वागड़ मे ही सुनने में मिला है। इसका मूल अरबी "बदले" लगता है। अर्थ-संक्रमण से यह तादर्थ्य में रूढ हुआ लगता है, क्योंकि "वदले" के अर्थ में भी यह अव्यय व्यापक रूप में प्रयुक्त होता है।

काज़ेँणेँ

"तारि काज़ेँणे मेँ तो सरवरियुँ मदाव्युँ"—लोक गीत इस पंक्ति में यह परसर्ग प्रयुक्त हुआ मुझे मिला है। गुजराती "काजे" (सं० कार्येण) के साथ यह एक रूप है।

५. थकि

ऊपर इस विषय में स्पष्टता कर दी गई है। मूल में यह अपादान के अर्थ में है।

ओ

भीली में जो "स़ु" मिलता है[२], उसके साथ इसकी एक रूपता मुझे विदित होती है। इसको सं० तस प्रत्यय में से निकालने की कोई आवश्यकता नहीं है। वागड़ी में लिंगानुसार इसका प्रयोग है। स्त्री० "इ" नपु० "उ"। मालवी में एक प्रत्यय "ओं" है, मारवाड़ी में यह "उ" के रूप में मिलता है।

---

१. तेस्सितोरी, सं० साकम्, पिशल के अनुसार कहते हैं, खण्ड ७०–५
२. ग्रियर्सन : ग्रन्थ ९, जिल्द ३, पृ० १२

एयु

इसके विषय में ऊपर स्पष्टता हो चुकी है।

६. नो

वागड़ी एवं भीली में प्रयुक्त यह परसर्ग गुजराती के "नो" से एकरूपता रखता है। और इसका लिंगानुसारी विशेषणात्मक प्रयोग है। ऊपर जहाँ "ने" की व्युत्पत्ति दी है, वहाँ इस "नो" का मूल बताया गया है।

७. में

यह परसर्ग हिन्दी-बोलियों में सर्व व्यापक है और शिष्ट गुजराती में नहीं होने पर भी इसकी कुछ प्रान्तीय बोलियों में जैसे उत्तर गुजराती, चरोतरी बोलो, और पँचमहाल की बोलियों में प्रचुर रूप में प्रचलित है। मारवाड़ी आदि राजस्थानी बोलियों में भी यह प्रयुक्त होता है। भीली व्यापक बोली में "माँ" होने पर भी वागड़ में कटारी, भीली और पलवाड़ी में इसका प्रयोग मिलता है।

पुरानी पश्चिमी राजस्थानी के "माहि" (सं० मध्ये) में से [1] ही इस "में" और गुजराती "मां-"का विकास है। भीतर का अर्थ लाने के लिये ही यह परसर्ग व्यापक बना है।

उपर

संस्कृत "उपरि" से अपभ्रंश "उप्पिरि" द्वारा "उपर" होकर गुजराती, हिन्दी आदि महत्व की भाषाओं में यह परसर्ग आया है। "बाहर की बाजू" अर्थ लाने के लिये ही यह परसर्ग व्यापक बना है।

मातें

गुजराती में जो "माथे" है और सौराष्ट्र की गुजराती में परसर्ग के रूप में व्यापक है उसके साथ इसकी एकरूपता है। (सं० "मस्तके"), भीली और वागड़ी में महाप्राण तत्व लुप्त होने के कारण "मातें" उच्चरित होता है।

कने, पाये

गुजराती "कने" (सं० कर्णके) और "पासे" (सं० पार्श्व के) के साथ इन दोनों की एक वाक्यता है। पुरानी राजस्थानी के "कन्हइ" और "पासइ" इनके मूल में हैं।

परसर्गों की दृष्टि से सातों विभक्तियों का रूपाख्यान यों वागड़ी में सुलभ बन जाता है।

---

१. तेस्सितोरी, खण्ड ७४–६

सर्वनाम

सर्वनाम के पुरुषवाचक, दर्शक, संबंधवाचक, प्रश्नार्थक और स्वार्थ वाचक ये भेद वागड़ी में सुलभ है। यहाँ उनका विभागवार परिचय देने का प्रयत्न करता हूँ—

१. पुरुषवाचक सर्वनाम

पुरुषवाचक सर्वनामों मे प्रथम और द्वितीय पुरुष के सर्वनाम तो आदिम भारत-आर्य भाषा भूमिका में भी एक वचन और बहु वचन में पृथकता रखकर उनकी अति प्राचीनता का अनुसन्धान रख रहे हैं। यह परम्परा सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और नव्य भारत-आर्य भाषाओं और उनकी बोलियों में चली आई है। वागड़ी के सर्वनामो की विचारणा में भी सर्वनाम कुंजी रूप हैं।

प्रथम पुरुष एकवचन

ओं, मुों दोनों वागड़ी में पहली विभक्ति में प्रचलित हैं। इनमें से ओं सं० अहम् (अप० हउ, पश्चिमी पुरानी राजस्थानी हूँ) का स्पष्ट विकास है। भीली और गुजराती में "हुँ" है तो, मारवाड़ी-मेवाड़ी-मालवी में "हूँ" है।

दूसरा "मुों" भीली में प्राप्त है। मारवाड़ी में "म्हुँ" है तो, मेवाड़ी और मालवी में "मूं" भी है। इसका विकास दूसरी विभक्तियों के एक वचन में व्यापक स० "मत्" की परपरा का द्योतक है।

भीली और वागड़ी में 'मकार' वाला विकल्प रूप राजस्थानी में प्रयुक्त विकल्प पर आधारित है। हिन्दी कुल में "मैं" है उसमें तो तीसरी विभक्ति के प्रा० "मइ", अप० "मइँ" का विकास है।

में

यह तीसरी विभक्ति एकवचन का कर्तृवाचक रूप है। और संस्कृत परंपरा की कर्मणि रचना में ही प्रयुक्त होता है। भीली, गुजराती, मारवाड़ी, मेवाड़ी और मालवी में भी यही स्थिति है। मारवाडी और मालवी में उच्चारण में महाप्राणता सुनी जाती है। इतना ही विशेष है। हिन्दी कुल का "मैं" यही वस्तु होने पर भी इन भाषाओं में वह प्रथमा विभक्ति मे ही प्रयुक्त होता है, इतना अन्तर पड़ गया है। तीसरी विभक्ति का हिन्दी "मैंने" आगे का विकास है।

कर्ता अर्थ में नये प्रकार में वागड़ी, भीली, गुजराती, मारवाड़ी, मेवाड़ी और मालवी में "मारे" रूप प्रयुक्त होता है। गुजराती, मारवाड़ी और मेवाड़ी में महा प्राणित उच्चारण इस शब्द में है। मेवाड़ी में "माराँ" और मालवी में "महारसे" भी प्रयुक्त होते हैं। इस "मार" अंग का हमारा विकास तो प्राकृत "महारअ" अंग में से है। महाप्राण तत्व जहाँ रहा है इसका कारण भी यही मूल रूप है।

मने

विकसित दूसरी और संप्रदान विभक्ति के लिये परसर्ग वाला "मने" रूप प्रयुक्त होता है। पुरानी पश्चिमी राजस्थानी के "मुहुनइ" का यह विकास है। भीली, गुजराती, मारवाड़ी और मेवाड़ी में "मने" रूप मिलता ही है। यहाँ गुजराती और मारवाडी में उच्चारण महाप्राणित है तो मालवी में तो "म्हके" रूप मिलता है।

अन्य विभक्तियों के अर्थ लाने के लिये "मार" अंग को परसर्ग लगाये जाते हैं। जहाँ छठी विभक्ति में "मारु" (विकारक) रूप है। वागड़ी में एक विशेषता मिलती है जो भीली गुजराती आदि में नहीं है—वह है, "मारॅंयु–मारॅंइ–मारॅंयो" (पाँचवी) और "मारॅंमें" (सातवीं) इन रूपों में मध्यम 'एकार' का प्रवेश। यह प्रक्रिया हिन्दी के समान है। वागड़ी में परसर्गों एवं नामयोगियों के पूर्व "मारॅं–" विभक्ति अंग ही प्रयुक्त होता है।

बहुवचन

अमें

वागड़ी में प्रथमा और तीसरी विभक्ति में बहुवचन में "अमें" रूप है जो अपभ्रंश "अम्हइं" का विकास है। गुजराती में भी यही रूप है, जिसमें उच्चारण में महाप्राणता है। भीली में "अमें" के अलावा "अमं" रूप भी प्रयुक्त होता है। मारवाड़ी मेवाड़ी और मालवी मे आदि अस्वरित श्रुति का लोप हुआ है। मेवाड़ी में "मा" का भी प्रथमा में प्रयोग होता है, जहाँ तीसरी विभक्ति में "माउ" रूप प्रयुक्त होता है। मालवी में हिन्दी की तरह "हम" भी प्रथमा में प्रयुक्त होता है। मारवाड़ी में विकल्प से और मालवी में महाप्राणित उच्चारण है, जबकि मेवाड़ी में नहीं है।

अमॅंने

यह विकसित दूसरी और चौथी संप्रदान विभक्ति के अर्थ के लिये जिसके मूल में पुरानी पश्चिमी राजस्थानी का "अम्हनइ" रूप पड़ा है, प्रयुक्त है। गुजराती में भी यही रूप है, किन्तु भीली में "अमॅंय" रूप है। परसर्गों के पूर्व एकवचन के "मारॅं–" की तरह "अमारॅं–" विभक्ति अंग व्यापक है।

प्रथम द्वितीय संयुक्तार्थ सर्वनाम "आपड़ें"

सं० "आत्मनः"–अप० "अप्पणउ" यह रूप स्वार्थ-वाचक सर्वनाम के स्वरूप में पुरानी राजस्थानी में "आपणउ" के रूप में प्रयुक्त होता था। तीसरी विभक्ति का अर्थ देने के लिये वहां "आपणइ" रूप बनता था। आगे बढ़ते स्वार्थवाचक अर्थ बदलकर प्रथम द्वितीय पुरुष का संयुक्त अर्थ स्थापित होने लगा और पुरानी राजस्थानी के विकास की भाषाओं में यह रूप स्थापित हो गया। साथ ही साथ वह प्रथमा विभक्ति में भी व्यापक बन गया। 'णकार' की सानुनासिकता वागड़ी में लुप्त हो गई

और विभक्तियों में तथा परसर्गों के पूर्व "आपड़ँ" रूप स्थापित हुआ। और षष्ठी का अर्थ "आपड़ो" (विकारक), (सं० "आत्मनकः", अप० "अप्पणउ", पुरानी राजस्थानी "आपणउ") से बताया जाता है।

दूसरी ओर संप्रदान विभक्ति के लिये ने परसर्ग के पूर्व "आपड़ँ" अंग प्रयुक्त होता है। इस सर्वनाम के प्रयोग के विषय में वागड़ी की जो विशेषता है वह प्रथमा विभक्ति में "आपुंण" रूप का प्रयोग है। वागड़ी में प्रथमा विभक्ति में "आपड़ँ" प्रयुक्त नहीं होता है। भीली में प्रथमा में और विभक्ति अंग के रूप में "आपड़ाँ"–है, जबकि तीसरी में "आपड़ँ" पाँचवी का अर्थ देने के लिये 'आपड़ँद्" और छठी का रूप तो वागड़ी और भीली का समान ही है। गुजराती में "आपणे" रूप प्रथमा तृतीया में और "आपण, आपणा" रूप विभक्ति अंग और "आपणो" (विकारक) प्रयुक्त होते हैं। मारवाड़ी, मेवाड़ी में "आपाँ", अंग व्यापक है, जबकि मालवी में "अपन" अंग है। आश्चर्य है कि हिन्दी में तो संस्कृत परंपरा से "हम" प्रचलित रहा है। हिन्दी में प्रान्तीय तौर से "अपन" प्रयुक्त होता है। किन्तु साहित्यिक हिन्दी में "अपन" का सर्वथा अभाव है।

द्वितीय पुरुष एकवचन

तो

यह रूप वागड़ी में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्रयुक्त होता है। अप० "तुहुँ" का यह विकास है। भीली, गुजराती, में "तुं", मारवाड़ी में "तूँ" एवं "थूँ", मेवाड़ी में 'थूँ" और मालवी एवं हिन्दी कुल में "तू" है। वागड़ी ने भी अनुनासिकता खो दी है।

दूसरे रूपों का प्रकार प्रथम पुरुष एकवचन की तरह ही है।

मारवाड़ी, मेवाड़ी और मालवी में त का थ हो गया है। जबकि गुजराती में 'त्ह" जैसा महाप्राणित उच्चारण मात्र है।

बहुवचन

तमें

वागड़ी में प्रथमा और तीसरी विभक्ति में बहुवचन में 'तमेँ" रूप है जो अपभ्रंश "तुम्हइ" का विकास है। गुजराती में भी यही रूप है जिसमें उच्चारण में महाप्राणता है। भीली में "तमेँ" के अलावा "तमाँ" रूप भी प्रयुक्त होता है। मारवाड़ी में "तमेँ" के अलावा "थेँ" और "थाँ" भी है। मेवाड़ी में "थाँ" ही है। मालवी में "तम" है। हिन्दी ने अपभ्रंश का "उकार" "तुम" रूप में बचा रखा है। मारवाड़ी और मेवाड़ी ने विभक्ति अंग भी "थाँ" बना रक्खा है। जबकि वागड़ी, भीली, गुजराती और मालवी में "तम" अंग है।

अन्य रूपों की प्रक्रिया प्रथम पुरुष के समान है।

द्वितीय पुरुष का मानार्थ—"आप"

वागड़ी, भीली, गुजराती, मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी एवं हिन्दीकुल की भाषाओं में समान रूप में "आप" उतर आया है। मूल में तो यह स्वार्थवाचक सं० "आत्मा", प्रा० "अप्पा" और आगे बढ़कर पुरानी राजस्थानी आदि का "आप" है। आश्चर्य यह है कि हिन्दी कुल में "आप" के प्रयोग में तृतीय पुरुष के क्रिया पद का प्रयोग होता है, जबकि वागड़ी आदि में द्वितीय पुरुष के क्रिया पद का विभक्ति के अन्यान्य अर्थ लाने के लिये परसर्गों का उपयोग प्रथमा, दूसरी और तीसरी विभक्ति के अलावा होता है। तीसरी विभक्ति में वागड़ी मे "ए" प्रत्यय शामिल हुआ है। जैसे कि—आपे कर्यु।

तृतीय पुरुष का "इ"

इ

गुजराती में तृतीय पुरुष के लिये "ते" का प्रयोग बहुत मर्यादित है। उसका *स्थान प्रायः "ए" ने लिया है। भीली, मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी, हिन्दी कुल आदि* में "ते" नहीं बचा है। वागड़ी में सौराष्ट्र की गुजराती की तरह "इ" तृतीय पुरुष के लिये एवं दर्शक सर्वनाम के रूप के लिये भी प्रयुक्त होता रहा है। इसके रूपाख्यान के विषय में नीचे "दर्शक सर्वनाम" शीर्षक में यथा स्थान बताया जायेगा।

दर्शक सर्वनाम

निकटतर वस्तु आदि बताने के लिये "आ", थोड़ी दूर की वस्तु आदि बताने के लिये "इ" और "पेलु", और दूर अथवा परोक्ष की वस्तु आदि बताने के लिये "उ" का प्रयोग सामान्य है।

"पेलु" (विकारक) यह शब्द प्रा० देश्य "पए" (पूर्वका) द्रविड़ी स्थानवाचक "ल्ल" = "पएल्ल" से निकला हो ऐसी एक संभावना है। डॉ० तस्सितोरी[1] "परिल्लउ" कहते हैं। केलोग ने "पग्लि" और "पल्लि" कहा है[2], जबकि डॉ० होर्नले बिहारी "परल" की संभावना करते हैं।[3] निश्चय करना कठिन है।

"आ"

वागड़ी में प्रथमा विभक्ति में "आ" और तीसरी विभक्ति में एकवचन में "अणेँ" और बहुवचन में "अणे" रूप हैं। जबकि परसर्गो के साथ २–४ में "आने" एक वचन में और "अणेँने" बहु वचन में; ५ में "अणेँयु", ६ में "आनु", ७ में

---

१. तेस्सितोरी, खण्ड १४४

२. केलोग, *खण्ड ६४५–२ अ*

३. होर्नले, खण्ड १०५ (गौ० व्या०)

"आनेमें, अणामें, एकवचन में और "अणाँउ", "अणाँनों", और "अणाँमें" है। स्वरूप पर से बहुत स्पष्ट है कि भीली में एकवचन में "अणा–" अंग और बहुवचन में "अणाँ–" अंग है, उनके स्थान पर वागड़ी में "अण–" और "अणाँ–" अंग अनुक्रम से एकवचन और बहुवचन में हैं। मेवाड़ी में जो "अणि–" अंग दोनों वचन में है इसके साथ मात्र स्वरूप साम्य मिलता है। गुजराती में तो सभी स्थानों में "आ–" अंग ही प्रचलित है। यों भीली और वागड़ी का सम्बन्ध यहाँ निकटतर प्रतीत होता है।

इ

प्रथमा विभक्ति में "इ" रूप है, किन्तु दूसरी विभक्ति से "ए" अंग व्यापकता से प्रयुक्त होता है। और गुजराती के साथ समानता रखता है। आश्चर्य की बात है कि भीली में प्रथमा में "वी" मेवाड़ी, मारवाड़ी और मालवी की तरह है। किन्तु विभक्ति रूपों में "वण" मेवाड़ी की तरह है। यों वागड़ी इस विषय में गुजराती की ओर झुक रही है। तीसरी विभक्ति में "एणाँ" एकवचन में और "एणे" बहुवचन में हैं। बाकी की रूपाख्यान पद्धति में परसर्गों के साथ एने, एनेयु–एणेयु, एनाँ, एनेमें एणामें एकवचन में और एणाँने, एणाँयु, एणाँनो, एणाँमें बहुवचन में २–४, ५, ६, ७ विभक्ति अर्थों के लिये हैं।

"उ"

गुजरात में सौराष्ट्र की हालारी में "ओ" और भीली, मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी और हिन्दी के "वो, उ, वह" रूपाख्यानों में "उण–" "वण" "उस–उन", इन सबके मूल में सं० "अदस्" पड़ा है। मारवाड़ी आदि में परोक्षार्थ लुप्त प्रायः है; जबकि वागड़ी के 'उ" में परोक्ष अर्थ रहा है और वह मात्र प्रथमा विभक्ति में ही प्रयुक्त होता है। दूसरे रूपाख्यान नहीं हैं। उसके स्थान पर "इ" के रूपाख्यान प्रचलित हैं।

सम्बन्ध वाचक सर्वनाम

संबंध वाचक सर्वनाम "जे" और "ते" गुजराती में हैं। वागड़ी में "ते" के स्थान पर "इ" का ही प्रयोग है। किन्तु भीली में "ति" का प्रयोग भी है। मारवाड़ी, मेवाड़ी में भी प्राय- "ति" का प्रयोग चालू है। हिन्दी में तो यह है ही नहीं। मालवी में भी नहीं दीखता है। "जे" का रूपाख्यान वागड़ी में दर्शक "इ" की तरह होता है। अन्तर मात्र इतना ही है कि प्रथमा में भीली की तरह "जो" नहीं, किन्तु 'जे" है यों रूपाख्यान गुजराती के साथ समानता बताता है।

प्रश्नार्थक सर्वनाम

गुजराती में मनुष्य के लिये "कोण" और अन्य चेतन प्राणियों तथा अचेतन पदार्थों के लिये "शुं" है। इस विषय में गुजराती, वागड़ी और भीली की समानता

है। अन्य भाषाओं में "शु" का प्रयोग नहीं है। भीली और वागड़ी में तालव्य उच्चारण नहीं है। वहाँ कंठय 'सकार' ही उच्चरित होता है।

"कुोंण"

प्रथमा एकवचन और वहुवचन दोनों में सं० "क: पुन:", अप० "कउण" के विकास में वागड़ी ने इस "कुोंण" को प्राप्त किया है। वागड़ी के दूसरे रूपाख्यानों में "के-" अंग मिलता है। इस विषय में "इ" और "जे" के रूपाख्यान की तरह ही इसके अंग के रूपाख्यान होते हैं। गुजराती में व्यक्ति विशेष बताने के लिये "कयो, कई, कयुं" प्रयुक्त होते हैं। वागड़ी में वहाँ "कैयो, कैं, कैयु" लिंगानुसारी विशेषणात्मक हैं।

"सुों"

यह सर्वनाम दोनों वचनों और तीनों लिंगों में समानता से प्रयुक्त होता है। १-२ विभक्तियों में "सुों", ३ में "सणँ-सेंणँ, ६ के अर्थ के लिये सानो, सांनो (विकारक) और ७वीं के अर्थ के लिये "सामें-सेंणामें रूप हैं। इस विषय में भीली के साथ समानता प्रतीत होती है। यहाँ देखने जैसा है कि सौराष्ट्र की गुजराती बोलियों में भी तीनों लिंगों में "शुं-' के ही रूपाख्यान होते हैं, प्रधान गुजराती की तरह तीनों लिंगों में नहीं।

अनिश्चित सर्वनाम

सं० "कोअपि" के विकास में अपनी भाषाओं में "कोई" आ मिला है। वागड़ी में वह "कोय" है। इसके सिवाय "कोक", "कुोंणँक", और "कोअेक" व्यापक हैं। भीली में सिर्फ "कोक" है। यहाँ वागड़ी और गुजराती के समान रूप लक्ष्य में लेने चाहिएँ। यह भी ध्यान में लेने जैसी बात है कि प्रश्नार्थक 'को" अंग को 'क' प्रत्यय लगाकर अनिश्चित सर्वनाम बनाया जाता है।

स्वार्थवाचक सर्वनाम

सं० "आत्मा" पर से प्रा० "अप्पा" द्वारा "आप" अंग मिला है। वागड़ी और भीली में "आप"-और "आपडु" प्रचलित हैं। गुजराती में "आप"-"आपणु" प्रचलित हैं। जबकि मारवाड़ी-मेवाड़ी में "आपाँ-आपाँरो" हैं। हिन्दी का "अपना" तो सं० "आत्मन:" का ही विकास है। वागड़ी में "पोतें" स्वार्थवाचक सर्वनाम व्यापक है और उसके चालू रूपाख्यान "पोत" अंग पर हैं। भीली और गुजराती मे भी वही है। इस शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में काफी मतभेद है। मुझे संभवित व्युत्पत्ति सं० "आत्मत्व" प्रा० "अप्पउत्त", पुरानी राजस्थानी "पउत" द्वारा लगती है।[1] मारवाड़ी-मेवाड़ी मालवी हिन्दी कुल में इसका पता नहीं लगता है।

सार्वनामिक साधित शब्द

वागड़ी में "आ" "ए" "जे" "ते" "के" अंगों को "वु" और "टलु" प्रत्यय लगाकर विशेषणात्मक साधित रूप प्रयुक्त किये जाते हैं। "टलु" के पूर्व "आ" ह्रस्व बन जाता है। जैसे कि—

"आवु" "एवु" "जेवु" "तेवु" "केवु";
"अटलु" "एटलु" "जेटलु" "केटलु"

वागड़ी में "तेटलु" है ही नहीं; यहाँ "अेटलु" से काम निभाया जाता है।

भीली मारवाड़ी मेवाड़ी और मालवी में "टलु" के स्थान पर "तरु" है। वागड़ी का साम्य गुजराती के साथ है। किन्तु गुजराती में समूह बताने के लिये "टलु" अंत्यग का प्रयोग है और नाप बताने के लिये "वडु" अंत्यग का प्रयोग है। जबकि वागड़ी के "टलु" में और मेवाड़ी-मालवी के "तरु" में दोनों अर्थ हैं। "वु" अंत्यग का विकास संभवत: "भव" शब्द से है, तो "टलु" अत्यग का विकास, ऋग्वेद जितने पुराने "ईयत्तक" शब्द के प्रयोग से प्रतीत होता है कि, "–त्तक" द्वारा प्रा० में "त्तअ–" "–त्तिअ–" "–त्तिल–" द्वारा अप० में प्रयुक्त "त्तुल–" (सि० हे० ८–४–४३५) से स्पष्ट है।[२]

विशेषण

विशेषण के विषय में कोई अधिक कठिनाई नहीं है। अविकारी और विकारी ऐसे दो भेद मिलते हैं। अविकारी विशेषणों में तो संज्ञाओं की तरह कोई परिवर्तन नहीं होता है। विकारी विशेषणों में संज्ञाओं की तरह प्रत्ययों एवं परसर्गों के पूर्व विभक्ति अंग पु० "आकारांत" और नपु० अंकारान्त प्रयुक्त होते हैं। जैसे कि—

पु० भलो कुतरो, भला कुतरा, भला कुतराने,
नपु० भलु कुतरु, भलँ कुतरँ, भला कुतराने, भलँ कुतरँने, आदि

जब तीसरी विभक्ति का "ए" प्रत्यय लगकर अंग के एक रूप बनता है तब रूप "भलँ कुतरँ" जैसा बन जाता है; किन्तु जब विशेष्य में अलग रहता है तब विशेषण का विभक्ति अंग ही प्रयुक्त होता है; जैसे कि—भलँ कुतरँएँ। गुजराती, भीली और वागड़ी में इस विषय में समानता है।

---

१. तेस्सितोरी : सं० आत्मन् का विकास कहते हैं, खण्ड ९२
के० का० शास्त्री : गुजराती भाषा शास्त्र, पृ० २६२

२. तेस्सितोरी, खण्ड ९३

संख्यावाचक विशेषण

वागड़ी के पास संख्या वाचक विशेषणों की जो अपनी संपत्ति है वह पुरानी पश्चिमी राजस्थानी की परंपरा में है। इस विषय में उसका गुजराती के साथ बहुत सा साम्य है। उच्चारणों में जो थोड़ासा अन्तर है वह भीली के साहचर्य का है।

यहाँ इन विशेषणों के विकास का कुछ ख्याल देना ठीक होगा—

१. एक

सं० "एक", प्रा० "एक्क", पु० प० राज० "एक"। इस शब्द में "एकार" का उच्चारण ह्रस्व होता है। "एक" से निष्पन्न दूसरी संख्याओं में "इयार" (११) के अलावा "एक" जीवित रहा है।

२. बँ

सं० "द्वे", प्रा० "बे", पु० प० राज० "बँ"।

भीली और गुजराती में "बे" है, किन्तु मारवाड़ी-मेवाड़ी-मालवी में हिन्दी की तरह "दो" अग मिलता है।

"बँ" पर से निष्पन्न सभी संख्याओं में "ब" अंग वागड़ी में है। "दो" का कोई संबंध किसी भी रूप में मिला नहीं है।

३. तँण

सं० "त्रीणि", प्रा० "तिण्णि", पु० प० राज० "तिणि"। भीली में "तँण" और मारवाड़ी-मेवाड़ी-मालवी हिन्दी कुल की तरह "तिन" (=तीन) भी है। जबकि गुजराती में लोक बोलियों में "तण" किन्तु शिष्ट में "त्रण" रूप मिलता है।

इस सख्या से संबंध वाले दूसरी निष्पन्न सख्याओं में "त"– (सं० त्रि–) अंग व्यापक है। गुजराती में इन सभी संख्याओं में विकल्प से "त्र–" अंग मिलता है।

४. स्यार

सं० "चत्वारि", प्रा० "चत्तारि", पु० प० राज० "च्यारि। गुजराती में लोक बोलियों में "च्यार" है, किन्तु शिष्ट में "चार" है। दूसरी संख्याओं में तो वागड़ी में "स–" और "सो–" (स० चतु–, प्रा० चउ–) यथा स्थान प्रयुक्त हैं। मारवाड़ी-मेवाड़ी में "च्यार" है तो मालवी और हिन्दी कुल में "चार" है।

५. पाँस

सं० "पंच", प्रा० "पंच", पु० प० राज० "पाँच"।

अन्य संख्याओं में मुख्यतया "प–" "पंस–" "पि–" "पां–" के रूप प्रयुक्त होते हैं।

भीली में "पांस", और गुजराती की चरोतरी की तरह "पोंस" भी मिलता है। गुजराती मारवाड़ी आदि में "पांच" है।

६. सो

सं० "षट्", प्रा० "छ", पु० प० राज० "छ"।

भीली और वागड़ी में "सो" हुआ है। मारवाड़ी "छव" के साथ इसका संबंध निकट का दीखता है। वेशक गुजराती लोक वोलियों में "छो" असामान्य नहीं है। निष्पन्न सख्याओं में "सो-" प्रायः है। कहीं-कहीं "स-" "सें-" भी मिलते हैं।

७. स़ात

सं० "सप्त", प्रा० "सत्त", पु० प० राज० "सात"।

निष्पन्न संख्याओं में "स़त-" "स़ांत-" "स़न्त-", "स़त्त" आदि विकार मिलते हैं। भीली और वागड़ी में समान रूप है। गुजराती-मारवाड़ी आदि में शुद्ध दंत्योच्चारण वाला "सात" शब्द है।

८. आट

सं० "अष्ट", प्रा० "अट्ठ", पु० प० राज० "आठ"।

निष्पन्न संख्याओं में "अट-" "अट्ट-" "अड-" "अड़" आदि विकार मिलते हैं। गुजराती-मारवाड़ी आदि में महाप्राण उच्चारण वाला "आठ" शब्द व्यापक है।

९. नोव

भीली और वागड़ी में "नोव" वोला जाता है। सं० "नाव-" नव का ही, गुजराती, मारवाड़ी आदि का जो विकास है, उसका ही यह वागड़ी का "नोव" उच्चारण भेद है।

१०. दस

सं० "दश-" का भीली में और वागड़ के देहातों में दो उच्चारण आया है बाकी सभी में दन्त्य उच्चार उतर आया है। यहां से सरलता के खातिर प्रत्येक दशक को समूह में लेकर संख्याओं का ख्याल दिया जाता है।

११. इया़र

सं० "एकादश", प्रा० "एगारह", से संभवित+ एयारह द्वारा वागड़ी को यह संख्या मिली है। भीली में तो आगे की संख्याओं का प्रयोग नहीं होता है। वागड़ी वोलने वाले उच्चवर्ण के लोगों को इन संख्याओं की आवश्यकता रहती है।

१२. बार १३. तेर

ये दोनों अप० "वारह" और "तेरह" के विकास हैं और दूसरी भगिनी भाषाओं में ये समान हैं।

१४. सौद

सं० "चतुर्दश–" अप० "चौदह" से पु० प० राज० मे "चउद" से गुजराती मारवाड़ी आदि के समानान्तर यह विकास है। "च" का "स" वागड़ी उच्चारण है।

१५. पनाॅर

सं० "पंचदश", अप० "पन्नरह" का वागड़ी विकास है। गुजराती में "पन्नर" वैकल्पिक रूप है, यह इसकी देन है। भगिनी भाषाओं में "पन्दर", "पन्द्र", "पन्दरा", "पन्द्रह" जैसे रूप दकार के बच जाने से मिले हैं।

१६. सु़ॊळ

सं० "षोडश", अप० "सोलह" के विकास में वागड़ी, भीली और मेवाड़ी को "सोळ" मूल का शब्द मिला है। वागड़ी का रूप भी यही है। उच्चारण-लाक्षणिकता वागड़ी की खुद की है।

१७. सतोर

सं० "सप्तदश", अप० "सत्तरह" का यह विकास है। मध्यवर्ती-स्वर का "ओ" उच्चारण वागड़ी की लाक्षणिकता है।

१८. अडार

सं० "अष्टादश", अप० "अट्ठारह" से गुजराती "अढार" होने के बाद वागड़ी में "अडार" मिला है। इसी कारण "ड" का उच्चारण भी शुद्ध मूर्धन्य है। क्योंकि मूल में संयुक्त ड+ढ के विकास में गुजराती में खासकर के सौराष्ट्र की गुजराती में, द्विस्वर मध्यगत 'ढ' का उच्चारण शुद्ध मूर्धन्य होता है। इस 'ढकार' वाले शब्द वागड़ी में हमेशा अपनी लाक्षणिकता से शुद्ध मूर्धन्य 'डकार' के रूप में उच्चरित होते हैं।

१९. ओगणि

सं० "एकोनविंशति", अप० "एगुणविंशा" का विकास गुजराती और मेवाड़ी में "ओगणीस" है। अन्त्य 'सकार' वागड़ी में उच्चरित नहीं होता है।

२०. वि

सं० "विंशति", अप० "वीस" गुजराती-मारवाड़ी-मेवाड़ी-मालवी में "वीस" के रूप में ही है। इस परम्परा में ही २१. अेकवि, २२. बावि, २३. तेवि, २४. साॅवि, २६. सव्वि, २७. सत्तावि, २८. अट्ठावि संख्याएँ हैं।

२५. पसि

सं० "पंचविंशति", अप० "पंचवीसा" का विकास है। यह भगिनी भाषाओं में "पच्चीस" मूल का विकास है।

२६. ओगणतरि

सं० "एकोनत्रिंशत्", अप० "एग्गुणत्तिस" से गुजराती में "ओगणतीस" और 'रकार' वच जाने से "ओगणत्रीस" भी व्यापक है। वागडी में 'सकार' की व्यापक लुप्तता के कारण और 'रकार' का विप्रकर्ष होने के कारण "तरि" अंत वाली संख्याएँ आती हैं। यों ३०. तरि, ३१. एकतरि, ३२. बतरि, ३३. तेतरि, ३४. साँतरि, ३५. पाँतरि, ३६. सतरि, ३७ साँतरि, संख्याएँ मिलती हैं। सिर्फ ३८. अड़ति में "तरि" नहीं बचा है। गुजराती मे "तीस–" "त्रीस", "एकत्रीस" शिष्टों में और "एकतीस" देहातों में व्यापक है; किन्तु "बत्रीस" से "अड़त्रीस" तक "त्रीस" ही व्यापक है।

३६. ओगणस्यालि, ४०. स्यालि सं. "एकोन चत्वारिंशत्", और "चत्वारिंशत्", अप० "चालीस" ये दो रूप उतर आये हैं। वागड़ी अपनी लाक्षणिकता से "स्यालि" कर लेती है। गुजराती और मेवाड़ी में 'लकार' का 'ळ' आया है। वागड़ी ने ळ का इन संख्याओं में स्वीकार नहीं किया है, यह आश्चर्य की बात है। ४१. एकतालि, ४२. बँतालि, ४३. तेतालि, ४५. पिस्तालि, ४६. सँतालि, ४७. सुन्तालि, ४८. अड़तालि, इन सख्याओं में प्रा० "चत्तालीस" के "तालीस" अग का गुजराती, वागड़ी, मेवाड़ी, मालवी, और हिन्दी कुल मे स्वीकार है। ४४. चुम्मालि यह पु० प० राज० "चउआँलीस" के रूप में मिलता है। गुजराती "चूंमाळीस", मेवाड़ी, "चमाळी" हिन्दी कुल में "चवालीस" इन सभी का सम्बन्ध पु० प० राज० के साथ यहां दीखता है।

४६. ओगणपसा, ५०. पसा सं० "पंचाशत्", अप० "पचास" के विकास में इन दोनों संख्याओं का विकास है। भगिनी भाषाओं ने "पचास" शब्द सुरक्षित रक्खा है। ५१. एकावन, ५२. बावन, ५५. पंसावन, ५७. सत्तावन ५८. अट्ठावन में प्रा० के "पण्णास" (सं० "पंचाशत्") का विकास अपनी भाषाओं में दिखाई देता है, जहाँ द्विस्वर मध्यगत "प" का "व" है। ५३. तँपन, ५४. साँपन और ५६. सप्पन, में "प" बच रहा है। गुजराती, मेवाड़ी, मालवी और हिन्दी कुल में भी ये दोनों स्थितियाँ मालूम होती हैं।

५६. ओगणसाट, ६०. साट,, ये दोनों सं० "षष्टि", प्रा० "सट्ठी", पु० प० राज० "साठि" के विकास में वागड़ी की लाक्षणिकता से हैं।

६१. इक्येँट, ६२. बाँएट, ६३. त्रेँएँट, ६४. साँएँट, ६५. पाँएट, ६६. साँएट, ६७. सुणिएट, ६८. अडिएट, इन संख्याओं में मध्यवर्ती 'सकार' का, वागड़ी की लाक्षणिकता से, लोप हुआ है। एकार होने का कारण उच्चारण की मृदुता लगता है। ६६. ओगणसित्तँर, ७०. सित्तँर, इन दोनों संख्याओं में सं० "सप्तति", प्रा० "सत्तरि" का विकास है। गुजराती में "सितँर"–"सित्तँर", मेवाड़ी में

"हितर" और मालवी और हिन्दी में "सत्तर" है। अन्य संख्याओं में 'स' के लोप के बाद ७१. एकोत्तँर, ७२. बुोतँर, ७३ तुोतँर, ७४. सिमुोतँर, ७५. पिसुोतँर, ७६. सुोतँर, ७७ सतुोतँर. ७८. अट्ठोतँर रूप वागड़ी में आये हैं। वागड़ी, गुजराती, मेवाड़ी और मालवी में मध्य में 'ओकार' प्रविष्ट हुआ है, इसका कारण स्पष्ट नहीं होता है। हिन्दी कुल में वहाँ "ह" पुराने "स" का स्थान रख रहा है।

८०. अँसि—सं० "अशीति", प्रा० "असीइ" के विकास में यह संख्या आई है। गुजराती, मेवाड़ी में "एँसी" है। किन्तु मालवी और हिन्दी में "अस्सी" है। अब ७९. ओगण्यासि, ८१. इक्यासि, ८२. ब्यांसि, ८३. त्यांसि, इन संख्याओं में तो संधि के कारण 'आकार' उतर आया है। "स" बच गया है। जबकि ८४. सा॑राइ ८५. पिस्याइ, ८६. स्यांइ, ८७. सत्याइ, ८८. अटयाइ, ८९. निव्याइ में सकार लुप्त हुआ है।

गुजराती, मेवाड़ी, मालवी, हिन्दी के रूपों में लगभग एक वाक्यता है।

९०. नँवु–नँउ

सं० "नवति", प्रा० "नवइ" का यह सीधा विकास है। गुजराती, मेवाड़ी और मालवी में भी "नेवु" "नेउ" व्यापकता से प्रयुक्त होते है।

९१. एकाणु, ९२. बाणु, ९३. ताणु, ९४. सोराणु, ९५. पन्साणु, ९७. सत्ताणु, ९८. अट्ठाणु, ९९. नन्याणु ये सब स० "नवति", प्रा० "नवइ" की विकसित दशा अन्त में आने के कारण "आ" स्वर बीच में प्रविष्ट हुआ है। गुजराती, मेवाड़ी, मालवी, हिन्दी सब मे "आ" स्वर स्थान पा गया है। ९६. सण्णु मे सं० 'पण्णवति" की परम्परा बच रही है। गुजराती आदि में तो वहाँ पारम्परिक "ण्ण" के विकास का "न" ही बच रहा है।

९९. निन्याणु—मारवाड़ी, "नन्याणु" मालवी "निन्याणु" और हिन्दी "निन्यानवे" की कक्षा में चला जाता है। जबकि मेवाड़ी और गुजराती में तो "नवाणु" ही है।

१०० सो

सं० "शतं", अप० "सउ" का वह वागड़ी, भीली, मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी और हिन्दी कुल में विकास है। शतकवाची बनते समय अप० "सइ" (सं० "शतानि") के विकास में वागड़ी, गुजराती और मेवाड़ी में "से"—'सें" आते हैं। गुजराती में शिष्टों में आज "सो" भी मालवी की तरह प्रयुक्त होता है। वागड़ी में मात्र "वँए" (२००) में 'सकार' का लोप हुआ है। ५०० पांस्से, ६०० सस्से इन दोनों संख्याओं के अलावा ३०० तणसे॑, ४०० स्यारसे॑, ७०० सातसे॑, ८०० आटसे॑ और ९०० नोवसे॑ के उच्चारण में सकार तालव्य उच्चरित नहीं होता है। वहाँ

अघोष कंठय उच्चारण है। १००० अजार, भगिनी भाषाओं की तरह अरबी से उधार लिया हुआ शब्द है।

लाक, करोड़, अबज ये तीन शब्द गुजराती, मालवी, मारवाड़ी, मेवाड़ी, हिन्दी आदि में समान हैं। वागड़ी अपनी लाक्षणिकता से अपना उच्चारण कर लेती है।

संख्यावृत्ति वाचक विशेषण

१. पॅलु, २. बिजु, ३. तिजु, ४. साँतु ये चार संस्कृत[1] "पाथिल्ल, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ" (प्रा० "पहिल्ल, बिइज्ज, तिइज्ज, चउत्थ") के विकास मे हैं। और स्वरूप से भीली, गुजराती, मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी में समान हैं। वागड़ी और भीली अपने तौर से उच्चारण कर लेती हैं।

६. सट्ठु, भी सं० "षष्ठ", प्रा० "छट्ठ" के विकास में समानता से है।

५. पांसमु, ७. सातमु और आगे की सभी संख्याओं में सं० के "म" प्रत्यय के विकास में "मु" विकारक लगता है। भीली, गुजराती, मेवाड़ी, में यही "म" प्रत्यय है। जबकि मारवाड़ी और हिन्दी में उसका सानुनासिक "वँ" बन जाता है।

समूह बताने के लिये "गणु" (विकारक) अन्त्यग (सं० "गुणित", प्रा० "गुणिअ") वागड़ी को गुजराती की तरह मिला है और "चार" की संख्या से आगे लगाया जाता है; जैसे कि "स्यारगणु", "पाँसगणु", "सोगणु" आदि। "एक" के विषय में सं० -"पुटक-" प्रा० "-पुडअ"- के विकास मे "-वड़िय़ु" (देखो गुजराती "एकवडुं", "बेवडुं", "त्रेवडुं"- "चोवडुं") लगता है; जैसे कि "एकवड़ियु"। किन्तु आगे "बमणु", "तमणु" (देखो गुजराती बमणुं, तमणुं-त्रमणुं (सं० -"मानक" प्रा० -"माणअ-")।

विशेषणों का तुलनात्मक रूप

विशेषणों के तुलनात्मक पुराने रूप "-एरु" (स० -"तर-", प्रा० "-पर-" के विकास में) प्रत्यय लगकर होते हैं। किन्तु प्रमाण बहुत कम है। "पण्यो नानॅरुवाळ" जैसे उदाहरणो मे लोकगीतो मे मिलता है। गुजराती मे भी बोलचाल की भाषा मे ही -"एरुं" प्रत्यय वाले शब्द प्रयुक्त होते हैं। शिष्टों मे प्रयोग लगभग बन्द हो गया है। मारवाड़ी आदि मे तो यह रूप है ही नही।

क्रियापद

वागड़ी में संस्कृत परम्परा के कालों में से वर्तमान एवं भविष्यत् काल और अर्थों मे आज्ञार्थ बचे है। विध्यर्थ है, किन्तु वह गुजराती की तरह वर्तमातकाल के रूपों का ही विकास है। क्रियाति पत्यर्थ भी प्रयुक्त होता है; किन्तु वह भी गुजराती की तरह वर्तमान कृदन्त के विकास में है।

क्रिया पदों के विषय मे इतना मालूम हुआ है कि १. व्यजनात और २. स्वरांत ऐसे दो क्रिया मूल हैं। व्यंजनांत के रूपो मे एकरूपता है। जबकि स्वरांत के रूपों में तारतम्य मिलता है।

१. व्यंजनांत क्रियाएं

कर : वर्तमान काल

पु०	एक वचन	बहुवचन
१. (ऑं)	करुँ सुँ	(अमे) करँसँ
२. (तुँ)	करँ स्	(तमे) करा सा
३. (इ)	करँ स्	(इ) करँ स्

विकास की दृष्टि से देखने पर अपभ्रंश "करउँ" (सं० +"करामि"), प्रा० "करसि", अप० "करहि", (सं० करसि), प्रा० अप० "करइ" (सं० +"करति"), अप० "करहुँ" (सं० +"कराम", प्रा० "कराम"), अप० करहु (सं० +"करथ", प्रा० करह"), अप० करहिँ (सं० +करन्ति, प्रा० करन्ति) रूप मूल में पड़े हैं। और उनको गुजराती की तरह वर्तमान काल काल का पूरा अर्थ लेने के लिये "स्" क्रिया मूल (पुरानी प० राज० "अछ"– "छ"–) के वर्तमान काल के रूपाख्यान सम्मिलित हुए हैं।

वागड़ी के लिये महत्व की वस्तु यह बन गई है कि मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी की तरह अप० "करहुँ", कर्तरि प्र० पु० बहुवचन का विकास उतर आया है। पुरानी और मध्यकालीन गुजराती में प्रथम पुरुष बहुवचन में "करुँ" रूप बच गया था; किन्तु अर्वाचीन गुजराती में वहाँ तृतीय पुरुष एकवचन का "करिये" जैसा कर्मणि रूप कर्तरि के अर्थ में आ गया है। वागड़ी की लाक्षणिकता यहाँ भीली की ही रही है। तृतीय पुरुष बहुवचन में सानुनासिकता गुजराती ने खोदी है, किन्तु वागड़ी, भीली, मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी में और हिन्दी कुल के "हैं" रूप में भी बच गई है। भीली ने भी "छ" के विकास में अघोष कँठय "स्" बचा रक्खा है; किन्तु मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी और हिन्दी कुल में घोष महाप्राण कंठय "ह" हो गया है। हिन्दी कुल ने वर्तमान काल बनाने में वर्तमान कृदन्त के रूपों के साथ "ह" क्रिया मूल के रूप अपना लिये हैं; जबकि उन रूपों के साथ मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी में तो वर्तमान कालीन रूपों का ही "ह" के सहायकारक रूपों की मदद मे काम लिया गया है।

भूतकाल

भूतकाल के रूप विशेषणात्मक भूत कृदन्तों से बनाये जाते हैं। सूचक बात यह है कि सकर्मक क्रियापदों के विषय में वागड़ी, भीली, गुजराती, मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी, हिन्दी आदि सभी भाषाओं में कर्ता तीसरी विभक्ति के प्रत्यय अथवा परसर्ग के साथ आता है; कर्म प्रथमा में आता है और क्रियारूप कर्म पर सामान्यतया आधारित रहता है। अकर्मक क्रियापदों के विषय में कर्तरि प्रयोग ही होता है और कर्ता प्रथमा में एवं क्रिया रूप कर्ता पर आधारित रहता है।

सकर्मक : कर

पु०	एक वचन	वहु वचन
१.	(मेँ) कयुँ	(अमेँ) कयुँ
२.	(ते) कयुँ	(तमेँ) कयुँ
३.	(एणेँ) कयुँ	(एणेँ) कयुँ

भीली में और गुजराती में इस क्रिया रूप के "कीदुं" और "कीधुं" यथाक्रम मिलते हैं। कारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी में नपुंसक लिंग का अभाव है; पुल्लिग के रूप इसके स्थान पर बनते हैं। हिन्दी में कर्ता में परसर्ग अनिवार्य है; जैसे कि "मैंने किया"।

अकर्मक : दोड़

पु०	एक वचन	वहु वचन
१.	(ओँ) दोड़्याँ	(अमेँ) दोड़्या
२.	(तो) दोड़्यो	(तमेँ) दोड़्या
३.	(इ) दोड़्यो	(इ) दोड़्या

भीली, गुजराती, मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी में इसकी प्रक्रिया समान है।

द्विकर्मक

द्विकर्मक क्रियारूपों के विषय में गौणकर्म चौथी विभक्ति का अर्थ लेता है और इसके परसर्ग को अपनाता है। प्रक्रिया साम्य का ख्याल निम्न उदाहरणों से आएगा—

वागड़ी	मेँ सोराने वटकु आल्युँ
भीली	मेँ सोराने वटकुं आलज्युं-दिदु
गुजराती	मेँ छोकराने वटकुं आल्युं-आप्युं-दीधुं
मारवाड़ी	मेँ छोराने वटको दियो
मेवाड़ी	मेँ छोराने वटको दिदो
मालवी	म्हें छोराके वटको दियो
हिन्दी	मैंने लड़के को टुकड़ा दिया

भविष्यत् काल

पु०	एक वचन	वहु वचन
१.	(ओँ) करे	(अमेँ) करसुँ
२.	(तो) करे	(तमेँ) करसाँ
३.	(इ) करसेँ	(इ) करसेँ

भीली में मुं करिस्–करसी, तुं करिस्–करसे, वो करसे एक वचन में; और अमं करसं, तमं करसो, बा करसें बहु वचन में हैं। वागड़ी का "करे" उच्चारण भीली "करिस्" का उच्चारण लाघव ही है। भीली के रूप "अमें करिशुं–करशुं" इन गुजराती रूपो के अलावा समान जैसे हैं। मात्र तीसरे पुरुष बहु वचन में गुजराती ने सानुनासिकता खो दी है।

रूप प्राप्ति के विषय में देखा जाय तो—सं० "करिष्यामि", अप० "करिस्सउं", पु० प० राज० "करिसु–करीस" के विकास में प्रथम पु० ए० व० का 'करे" रूप है। दूसरे पुरुष एक वचन में सं० "करिष्यसि", अप० "करिस्सहि", पु० प० राज० "करिसि" से "करे" रूप मिलता है। तीसरे पुरुष ए० व० में सं० "करिष्यति", प्रा० अप० "करिस्सइ", पु० प० राज० "करिसइ" के विकास में "करसँ" रूप है। प्र० पु० ब० व० में स० "करिष्यामः", अप० "करिस्सहुँ", पु० प० राज० "करिसिउं" के विकास में "करसँ" है। भीली "करसां" और गुज० "करशुं" समान विकास के हैं, यह स्पष्ट है। दूसरे पु० ब० व० मे सं० "करिष्यथ", अप० "करिस्सहु", पु० प० राज० "करिसउँ" का विकास "करसोँ" है। तीसरे पु० ब० व० में स० 'करिष्यन्ति", अप० 'करिस्सहि", पु० प० राज० "करिसइं" का विकास "करसेँ" है। मारवाड़ी और मेवाड़ी ने "स्" के स्थान पर घोष महाप्राण "ह" कर लिया है। मारवाड़ी में प्र० पु० ए० व० में "करहूँ–करसू" और मेवाड़ी में "कअरूं" है। दूसरे और तीसरे पु० ए० ब० और ब० व० में मारवाड़ी में "करसी–करही" रूप हैं तो मेवाड़ी में ए० व० में "कअरे–करे" और ब० व० में यथाक्रम "कअरो-कअरें" हैं। प्र० पु० ब० व० में तो "कअराँ" है। मालवी और हिन्दी ने तो इन रूपों को खो दिया है।

मारवाड़ी-मेवाड़ी-मालवी-हिन्दी में "ग" प्रकृति का प्रवेश ध्यान खींचता है। इसमें विवेक यह है कि मारवाड़ी-मेवाड़ी और हिन्दी में लिंगवचनानुसारी गो, गा, गी, गे होते हैं; जबकि मालवा में अविकृत "गा" ही होता है। मारवाड़ी में विकल्प से इसी प्रकार का "ला" होता है, जो ढूंढाड़ी-जयपुरी में लो-ला-ली-ले का रूप ले लेता है। गुजराती में ऐसे कोई रूप नहीं हैं, किन्तु वागड़ी और भीली में मेवाड़ी की तरह अविकृत "गा" होता है जो मेवाड़ी का असर है। जैसे कि वागड़ी रूप—

पु०	एक वचन	बहु वचन
१.	करुँगा	करँगा
२,	करँगा	करोगा
३.	करँगा	करंगा

इन रूपों की मैंने व्यापकता अनुभूत नहीं की है।

आज्ञार्थ

वागड़ी में आज्ञार्थ सिर्फ दूसरे पुरुष में ही होता है। भीली, गुजराती, मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी और हिन्दी कुल में रूपों की समानता है।

सं० "कुरु", अप० "करि" के विकास में ए० वचन में "कर" और सं० "कुरुत", अप० "करहु" के विकास में ए० वचन में "करो" रूप हैं। गुजराती उच्चारण में लघु प्रयत्न "य" का श्रवण होता है, जो अपभ्रंश "करि" के ह्रस्व 'इकार' का अवशेष बच रहा है।

कुछ भविष्यत् के अर्थ को अपने में रखने वाले आज्ञार्थ रूप वागड़ी में प्रयुक्त होते हैं; जैसे कि—

एक वचन	बहु वचन
करज्य	करज्यो

भीली, गुजराती, मारवाड़ी और मेवाड़ी में समान रूप मिलते हैं। उच्चारण भीली के अलावा शुद्ध "ज" है ब० व० में भीली में "करजो" किन्तु गुजराती-मारवाड़ी में शुद्ध 'जकारवाले' "करजो" रूप मिलते हैं। गुजराती के उच्चारण में लघु प्रयत्न 'यकार' सुना जाता है।

इन रूपों के विकास में विध्यर्थ के सं० "एय" प्रत्यय वाले आत्मने पदी रूप नियामक हैं।[1]

सं० "करेय–", प्रा० अप० "करेज्ज–"

होर्नले ने[2] वर्तमान कालीन कर्मणि रूप का विकास माना था, किन्तु लासन[3] के मत का स्वीकार करके डॉ० तेस्सितोरी ने बताया कि यह रूप आशीर्वादार्थ (विध्यर्थ) का ही विकास है।[4] सिद्धहेम ८–४–३८३, ३ मे "देज्जहि" रूप प्रयुक्त हुआ ही है। मालवी और हिन्दी में इन रूपों का पता नहीं है।

विध्यर्थ

वर्तमान काल के मूल रूपों के विकास में मिले हुए रूपों का ही विध्यर्थ में प्रयोग होता है। स० विध्यर्थ मूलानुसारी रूप ऊपर के भविष्यत् आज्ञार्थ के लिये

---

१. तेस्सितोरी, खण्ड ९३
   के० का० शास्त्री : गुजराती भाषा शास्त्र, पृ० १७१–७२
२. होर्नले, गौ० व्या० खण्ड ४६६
३. लासन Lasan। तेस्सितोरी, खण्ड १२०
४. तेस्सितोरी : खण्ड १२०

बचे हुए रूपों के अलावा वागड़ी, भीली, गुजराती, मारवाड़ी आदि भाषाओं ने खो दिए हैं।

स्वरांत क्रियाएँ

स्वरांत क्रिया मूलों की अपनी अपनी लाक्षणिकता उतर आई है। वागड़ी में आकारान्त, इकारान्त, उकारान्त, एकारान्त और ओकारान्त क्रिया मूल मिले हैं। इन क्रियाओं के रूपाख्यान यहाँ बताये जाते हैं। इन रूपों के लिये प्रत्यय व्यंजनांत क्रियाओं को लगते हैं; वे ही हैं। तो भी अपनी लाक्षणिकता से कहीं कहीं लोप या स्वरूप भेद मालूम होता है।

आकारान्त

ज़ा था खा गा ना सा सा मा वा इन क्रिया मूलों के रूप समान होते हैं।

वर्तमान काल

पु०	एक वचन	बहु नचन
१.	ज़ोँ स़ुँ	ज़ँ स़ँ
२.	ज़ाय् स़ॅ	ज़ो स़ो
३.	ज़ाय् स़ॅ	ज़ेँ स़ेँ

सं० "यामि", अप० "जाउँ" से "ज़ोँ", सं० "यामः", अप० "जाहुँ" से "ज़ँ", सं० "यासि", अप० "जाहि", पु० प० राज० "जाइ" से "ज़ाय", सं० "यात", अप० "जाहु", पु० प० राज० "जाउ" से "ज़ो", सं० "याति", प्रा० अप० "जाइ" से "ज़ाय्" और सं० "यान्ति", अप० "जाहिँ", पु० प० राज० "जाइँ" से "ज़ेँ" यह इन रूपों का विकास है। इसकी समानता से दूसरे आकारान्त क्रिया मूलों के रूपाख्यान उच्चरित होते हैं।

भविष्यत् काल

पु०	एक वचन	वहु वचन
१.	ज़ँ	ज़ँस़ँ
२.	ज़ँ	ज़ोस़ो
३.	जास़ॅ	ज़ेँस़ेँ

प्रथम पु० ए० व० में और दूसरे पु० ए० व० में परम्परा से प्राप्त भविष्यत् का "स" लुप्त हुआ है और दूसरे रूपों में अपनी लाक्षणिकता से कंठय अघोप 'स़कार' आ गया है। यों व्यंजनांत क्रिया मूलों के विकास से विशेप कोई भेद नजर नहीं

आता है। इन क्रिया मूलों के अंत में व्यंजन नहीं होने के कारण संधि स्वरात्मक उच्चारण बन जाता है।

आज्ञार्थ

पु०	एक वचन	बहु वचन
२.	जा—जाजे	जो—जाजु

इन रूपों का विकास व्यंजनांत क्रिया मूलों के समान ही है।

(स्वरांत क्रिया मूलों के रूपाख्यान गुजराती और भीली के साथ खूब समानता रखते हैं। जो थोड़ा सा अन्तर सुनाई देता है वह उच्चारण प्रक्रिया का ही है)

इकारान्त

इकारान्त आदि क्रिया मूलों में भी यही परिस्थिति है। पी० बी० इन दोनों क्रिया मूलों के रूपाख्यान समान हैं।

वर्तमान काल

पु०	एक वचन	बहु वचन
१.	पिउँ सुँ	पिअँ सँ
२.	पियँ सँ	पियाँ सो
३.	पियँ सँ	पियेँ सेँ

प्र० पु० ए० व० में सं० "पिवामि", अप० "पिअउँ", पु० प० राज० "पीउँ", और ब० व० में सं० "पिवामः", अप० "पिअहुँ", पु० प० राज० "पीउँ" से एकवचन और बहु वचन के रूप मिले हैं। दूसरे पुरुषों के रूप के लिये भी अप० "पिअ" अंग नियामक है। प्र० पु० व० व० के अलावा दूसरे सभी रूप गुजराती के समान हैं। भीली में यह व० व० "पियाँ" होता है, इतना ही फर्क है।

भविष्यत् काल

पु०	एक वचन	बहु वचन
१.	पियेँ	पिसँ
२.	पियेँ	पिसो
३.	पिसँ	पिसेँ

प्र० पु० और द्वि० पु० ए० व० में परम्परा प्राप्त 'सकार' का लोप होता है।

संस्कृत में "पा" धातु के रूप भविष्यत् काल में "पास्यति" आदि होते हैं, किन्तु प्राकृत से ही वर्तमान काल के जैसा "पिअ–" अंग क्रिया मूल रूप बन गया है

और इसी अंग के ही रूपाख्यान बने है। वागड़ी, भीली, गुजराती आदि में यही हालत है।

आज्ञार्थ

पु०	एक वचन	वहु वचन
२.	पि,—पिजे	पियो,—पिजु

उकारान्त

Sleep सू (सोना), लु, सु (टपकना), इन क्रिया मूलों के रूप समान होते हैं।

वर्तमान काल

पु०	एक वचन	वहु वचन
१.	सूवों सुों	सुवॅं सॅं
२.	सुवॅं सॅं	सुवो सांॅ
३.	सुवॅं सॅं	सुवेॅं सेॅं

"स्वप्" धातु का प्राकृत में "सुअ–" अंग आता है। अप० में "सुअउं" "सुअहुँ" 'सुअहि" "सुअहु" "सुअइं" और "सुअहिं" रूप होते थे, इनका यह विकास है। वागड़ी की लाक्षणिकता से कंठय अघोष 'सकार' का उच्चारण और गुजराती की तरह उच्चारण में 'उ' के पीछे "व्" श्रुति सुनी जाती है।

भविष्यत् काल

पु०	एक वचन	वहु वचन
१.	सूवे	सू(व)सॅं
२.	सूवे	स(व)सो
३.	सू(व)सॅं	सू(व)सेॅं

कांउँस में दिया हुआ "व्" अल्पोच्चरित है। प्रा० "सुअ" के विकास में इस श्रुति का श्रवण वागड़ी में विशिष्टता से होता है जो गुजराती में भविष्यत् काल के रूप में नहीं है।

आज्ञार्थ

पु०	एक वचन	वहु वचन
२.	सू, सूजे,	सूओ, सूजु–सूवँजु

"सूवँजु" रूप वागड़ी की अपनी लाक्षणिकता है।

एकारान्त

कँ, पँ (प्रविष्ट होना), वँ (बैठना), रँ (रहना), लँ, बँ (वहना), इन क्रिया मूलों के रूप समान होते हैं। वागड़ी में "दँ" क्रिया मूल स्वतंत्र क्रिया के रूप में नहीं आता है। उसके स्थान पर हमेशा 'आल' (देना) क्रिया मूल का ही प्रयोग होता है। उत्तर गुजरात और चरोतर की बोलियों में भी यही परिस्थिति है। संयुक्त क्रिया पदों में सहायक क्रिया पद के रूप में ही "दँ" का प्रयोग वागड़ी, भीली, उत्तर गुजराती और चरोतरी में होता है। यहाँ इस क्रिया मूल का रूप "कँ," (कहना) के रूपों के समान होता है।

वर्तमान काल

पु०	एक वचन	बहु वचन
१.	कौं सुँ	कँ सूँ
२.	कँ सँ	को सो
३.	कँ सँ	कँ से

भविष्यत् काल

पु०	एक वचन	बहु वचन
१.	कँ	कँसूँ
२.	कँ	कोसो
३.	कँसँ	कँसे

आज्ञार्थ

पु०	एक वचन	बहु वचन
२.	कँ, कँजँ	को, कँजु

सं० "कथ"—प्रा० अप० "कह" के विकास में पु० प० राज० में "किहि"-अंग में से "ह" श्रुति के अनुच्चारण से सौराष्ट्र की गुजराती की तरह वागड़ी का "कँ" अंग मिलता है। "रँ" (पु० प० राज० "रिहि"—) और "वँ" (सं० "वह", पु० प० राज० "विहि"—) की भी यही परिस्थिति है। पँ सँ "प्रविश"—प्रा० "पइस"— और "वँ" सं० 'उपविश"— प्रा० 'बइस"— के विकास में पु० प० राज० "पिस"—"विस" होने के बाद 'सकार' की अनुच्चरित दशा के कारण हुए हैं।

रूपाख्यानों की दृष्टि से देखा जाय तो प्रथम पुरुष एक वचन के अपवाद को छोड़कर वागड़ी में वर्तमान और भविष्यत् के रूप समान उच्चरित होते हैं। वर्तमान में "छ" प्रकृति का कण्ठ्य अघोष "स" होता है तो भविष्यत् में प्रत्यय की "श" प्रकृति का होता है।

गुजराती में "कहे, रहे, वहे" यों 'हकार' को अलग मानकर लेखन में बताने का रिवाज है। किन्तु उच्चारण की दृष्टि से वे "कह़े, र्हे, व्हे" हैं। स्वरूप में तो वहाँ महाप्राण एकात्मक स्वर ही उच्चरित होता है। वागड़ी और भीली के रूप "कँस़ँ", (भीली "काँसाँ") के अपवाद को छोड़कर समान हैं।

ओकारान्त

को (सड़ना), खो (खोना), गो (गु० गूंचववुं), जो (देखना), ट्वो (गु० पावुं), ड्वो (गु० डोळवुं), दो (गु० दोहवुं), धो (धोना), पो (गु० रोटला वणवा), मो (गु० मोहनुं अने मोण नाखवुं वन्ने अर्थमां) रो (रोना), सो (गु० सोवुं), ओ (गु० होवुं), इन क्रिया मूलों के रूप समान होते हैं। इन रूपों में "ओ" और 'ओ" का उच्चारण भेद जहाँ है वहां वह सुरक्षित है।

वर्तमान काल : दो

पु०	एक वचन	बहु वचन
१.	दोवुँ स़ुँ	दोव़ँ स़ँ
२.	दोव़ स़ँ	दोवो सो
३.	दोवँ स़ँ	दोव़ँ स़ँ

भविष्यत् काल

पु०	एक वचन	बहु वचन
१.	दोव़	दो(व)स़ँ
२.	दोवँ	दो(व)सो
३.	दो(व)स़ँ	दो(व़)सँ

आज्ञार्थ

पु०	एक वचन	बहु वचन
२.	दो, दोज़	दोवो, दोजु-दोवँजु

गुजराती "जोइए" (=हिन्दी चाहिए) इस अर्थ का एक अपूर्ण क्रिया रूप "जुवँ" ऐसा वागड़ी में प्रयुक्त होता है। सं० "युज्यते", प्रा० "जुइज्जइ", अप० "जुइअइ" पु० प० राज० "जुइयइ" के विकास में एक ओर गुजराती रूप और दूसरी ओर वागड़ी रूप मिला है। भविष्यत् काल में उसका वागड़ी में "जुवस़ँ" और गुजराती में "जोइशे" प्रयुक्त होते हैं।

गुजराती में लिखने में कृत्रिम रूप लिखे जाते हैं, खासकर के 'ह श्रुतिवाले' क्रिया रूपों में सौराष्ट्र में 'हश्रुति' नहीं है, वहाँ वागड़ी और सौराष्ट्री के रूप समान

सुने जाते हैं। इन रूपों का विकास पु० प० राज० में से सीधा हुआ है और वागड़ी अपनी लाक्षणिकता से उच्चारण कर लेती है।

भूतकाल

अनियमित क्रिया मूलों के भूतकाल के रूप करते समय इनके सं० प्रा० अप० और पु० प० राज० से मिले हुए भूत कृदन्त के रूप प्रचार में हैं—

ऐसा भी हुआ है कि कितने ही रूप वागड़ी में आभास साम्य (एनेलोजी Anology) से भी हुए हैं।

जा़	—	ग्यो, गै, ग्यु (सं० गत–)
था	—	थ्यो, थै, थ्यु (सं० स्थित–)
खा	—	खादो, खादि, खादु (सं० खादित–)
गा	—	गायो, गाइ, गायु
ना	—	नायो, नाइ, नायु (सं० स्नात–)
सा़	—	सा़यो, सा़इ, सा़यु
सा	—	सायो, साइ, सायु
मा	—	मायो, माइ, मायु (सं० मात–)
वा	—	वायो, वाइ, वायु (स० वात–)
पि	—	पिदो, पिदि, पिदु (स० पित–)
वि	—	विनो, विनि, विनु
सु	—	सुयो, सुइ, सुयु (सं० श्रुतित–)
लु	—	लुयो, लुइ, लुयु
सु़	—	सु़तो, सु़ति, सु़तु (सं० सुप्त)
कँ	—	क्यो, कै, क्यु (सं० कथित–)
पँ	—	पँटो, पँटि, पँटु (सं० प्रविष्ट–)
वँ	—	वँटो, वँटि, वँटु (सं० उपविष्ट)
रँ	—	"कँ" की तरह
लँ	—	लिदो, लिदि, लिदु
वँ	—	"कँ" की तरह
खो	—	खोयो, खोइ, खोयु
गो	—	गोयो, गोइ, गोयु
जो़	—	जोयो, जो़इ, जो़यु (सं० द्योतित)

अन्य ओकारान्त क्रिया मूलों के रूप इन तीनों के समान होते हैं।

ओ	—	अतो, अति, अतु

गुजराती का हकार इस क्रिया मूल में लुप्त हुआ है।

कर्मणि – प्रयोग

वागड़ी में क्रियामूलों का कर्मणि प्रयोग पु० प० राजस्थानी की परम्परा में गुजराती की तरह "आ" प्रत्यय क्रिया मूल के अन्त में आकर बनता है और रूपाख्यान उसी तरह होते हैं; जैसे कि—"कराय सॅ" स्वरांत क्रिया मूलों के विषय में भी यही परम्परा है और क्रिया मूल एवं "आ" प्रत्यय के बीच में "व" दाखिल होता है। जैसे कि—"खवाय सॅ", "पिवाय सॅ"। अकर्मक क्रिया रूपों में भी इसी तरह "व" लगाया जाता है। जैसे कि—"ज़वाय सॅ"। कर्मणि रूप रचना में इस "आ" प्रत्यय के कारण अंग आकारान्त बन जाता है और आकारान्त धातुओं की तरह रूपाख्यान होते हैं।

सं० में नाम धातुओं का कर्मणि अर्थ होता है—वहाँ कृष्ण परसे "कृष्णायते" जैसा रूप बनता है। संभव है कि यहाँ का "आय" पु० प० राज० में "आ" के स्वरूप में स्थिर हुआ है। मुग्धावबोध "औक्तिक" में 'आवाली' रूप प्रयुक्त हुआ है।[1]

प्रेरणार्थक क्रिया

वागड़ी की प्रेरक बनाने की प्रक्रिया गुजराती की ही है। मात्र पुनः प्रेरक रूप बनाते समय गुजराती में "अडाव" या "अराव" विकल्प से लगाये जाते हैं, वहाँ वागड़ी में कितनेक रूपों में "आड" प्रत्यय से काम लिया जाता है। "अडाव" वाले रूपों की तो कमी नहीं है।

यहाँ प्रेरक प्रक्रिया के चारों प्रकार की वागड़ी की मीमांसा निम्न रूप से है—
१. अकर्मक क्रिया पदों पर से सकर्मक बनाने की प्रक्रिया प्रथम है जो संस्कृत परंपरा की है। (जैसा कि पत् का "पातयति" आदि)

उकळ	—	उकाळ
उगर	—	उगार
उसळ	—	उसाळ
सर	—	सार
टळ	—	टाळ
तर	—	तार
उतर	—	उतार
तप	—	ताप
दव	—	दाव
सुट	—	सोड़

---

१. मुग्धावबोध औक्तिक, के० का० शास्त्री : गुजराती भाषा शास्त्र पृ० १९८

पड़	—	फाड़
पळ	—	पाळ
फाट	—	फाड़
वळ	—	वाळ
बुड	—	बोळ
मर	—	मार
ढळ	—	ढाळ, ढोळ
फुट	—	फोड़
उसर	—	उसेर

२. अकर्मक, सकर्मक कोई भी क्रिया मूल हों, उनको "आव" अथवा प्रसंग-वशात् "अव" लगाकर स्वाभाविक प्रेरक रूप बनाये जाते हैं—

ओर	—	ओरव
सग	—	सगाव (गुज० चणवुं)
थाक	—	थकव
फुल	—	फुलव
भुल	—	भुलव
फर	—	फेरव
तार	—	तारव
सुक	—	सुकव (गुज० चुक)
सरक	—	सरकाव

सं० में आकारांत धातुओं को "आप्" लगाया जाता था। पाली में व्यापकता से यह लगाया जाता था, फिर प्राकृतों में वह "आव" रूप में व्यापक बना, जो आज की परम्परा में स्थापित हुआ। 'ज्ञा' धातु के "ज्ञपयति" जैसे स्वरूप की छाया में मर्यादित "अव" के रूप में भी मिलते हैं, "आव" तो व्यापक रूप में होता है।[1]

३. इस प्रक्रिया में मूल रूप को "आड़" लगता है। इस "आड़" के रूप अपभ्रंश में अत्यन्त मर्यादित हैं;[2] किन्तु पु० प० राज० में संख्या वल वढ़ता हैं।

अड	—	अडाड़
ओंग	—	ओंगाड़ (गुज० उंघ)

१. मुग्धाववोध औक्तिक, के० का० शास्त्री : गुजराती भाषा शास्त्र पृ० ११८
२. आचार्य हेमचन्द्र (सि० हे०) ८–४–३०

उग	—	उगाड़
ओड	—	ओडाड़ (गुज० ओडवुं)
घट	—	घटाड़
घोंट	—	घोंटाड़ (गुज० घूंट)
साट	—	सटाड़
साक	—	सकाड़
साव	—	सवाड़ (गु० चाव अने छा)
सुवु	—	सुवाड़ (गुज० चूसवुं अने चूवुं)
जि़व	—	जि़वाड़
ज़म	—	ज़माड़
डोक	—	डोकाड़
देक	—	देकाड़
नास	—	नसाड़ (गुज० नाचवुं)
पँ	—	पँवाड़ (गुज० पेसवुं)
वँ	—	वँवाड़
बुड	—	बुडाड़
मट	—	मटाड़
रम	—	रमाड़
गम	—	गमाड़ (गु० गमवुं)
वद	—	वदाड़ (गुज० वधवुं)
लाग	—	लगाड़
पुग	—	पुगाड़
स़ुंग	—	स़ुंगाड़ (गुज० सूंघवुं)
स़ुज़	—	स़ुज़ाड़
सु	—	सुवाड़
उट	—	उटाड़ (गुज० उठवुं)
उड	—	उडाड़
ज़ाग	—	ज़गाड़
ठेंक	—	ठेंकाड़
सोट	—	सोटाड़
भम	—	भमाड़
सि़क	—	सि़काड़ (गुज० शीखवुं)
खुट	—	खुटाड़
पि	—	पिवाड़

बि	—	बिवाड़
गा	—	गवाड़
खा	—	खवाड़
ना	—	नवाड़
कँ	—	कँवाड़
दँ	—	दँवाड़
लँ	—	लँवाड़
धुो	—	धुोवाड़
दुो	—	दुोवाड़
रुो	—	रुोवाड़
ज़ुो	—	ज़ुोवाड़

४. गुजराती में जहाँ "अडाव"—"अराव" है, वहाँ वागड़ी में कितनेक क्रिया मूलों में "आड़" आता है; जैसे कि—

पड़	—	पाड़	—	पड़ावाड़
वळ	—	वाळ	—	वळावाड़
सर	—	सार	—	सरावाड़
टुट	—	तुोड़	—	तुोड़ावाड़
फुट	—	फुोड़	—	फुोड़ावाड़
राँद	—	रँदाव	—	रँदावाड़
अुोंग	—	अुोंगाड़	—	अुोंगावाड़
उगल	—	उगलाव	—	उगलावाड़
लड़	—	लड़ाव	—	लड़ावाड़
तर	—	तराव	—	तरावाड़
तप	—	तपाव	—	तपावाड़
दव	—	दाब, दबाव	—	दबावाड़
सुोड़	—	सुोड़ाव	—	सुोड़ावाड़
कर	—	कराव	—	करावाड़
पळ	—	पाळ, पळाव	—	पळावाड़
फट	—	फाट, फड़ाव	—	फड़ावाड़
वळ	—	वाळ, वळाव	—	वळावाड़

यह मुझे वागड़ी की अपनी लाक्षणिकता लगती है।

आल	अलाव	अलावाड़
उपण	अुपणाव	उपणावाड़

कर	कराव	करावाड़
कसर	कसराव	कसरावाड़
काड	कडाव	काडावाड़
कात	कताव	कतावाड़
काप	कपाव	कपावाड़
कुट	कुटाव	कुटावाड़
खरस	खरसाव	खरसावाड़
खैंस	खैंसाव	खैंसावाड़
खुतर	खुतराव	खुतरावाड़
गण	गणाव	गणावाड़
गाल	गलाव	गलावाड़
डाक	डकाड़	डकावाड़
डोळ	डोळाव	डोळावाड़
तर	तराव	तरावाड़
तल	तळाव	तळावाड़
ताण	तणाव	तणावाड़
तुंक	तुंकाव	तुंकावाड़
दकड़	दकड़ाव	दकड़ावाड़
दळ	दळाव	दळावाड़
नम	नमाव	नमावाड़
नाक	नकाव	नकावाड़
नेक	नेकाव	नेकावाड़
नुतर	नुतराव	नुंतरावाड़
पण	पण्णाव	पण्णावाड़
परक	परकाव	परकावाड़
पाद	पदाव	पदावाड़
पाळ	पळाव	पळावाड़
फाड़	फड़ाव	फड़ावाड़
फाड़	फ़ोड़ाव	फ़ोड़ावाड़
फ़ोल	फ़ोलाव	फ़ोलावाड़
बक	बकाव	बकावाड़
बाळ	बळाव	बळावाड़
बोल	बोलाव	बोलावाड़

भण	भणाव	भणावाड़
भर	भराव	भरावाड़
भुल	भुलाव	भुलावाड़
माँग	मँगाव	मँगावाड़
माँज़	मँज़ाव	मँजावाड़
माँड	मंडाव	मंडावाड़
मान	मनाव	मनावाड़
माप	मपाव	मपावाढ़
मार	मराव	मरावाड़
मेल	मेलाव	मेलवाड़
मोळ	मोळाव	मोळावाड़
राक़	रकाव	रकावाड़
राँद	रंदाव	रंदावाड़
रुोक	रुोकाव	रुोकावाड़
रुोप	रुोपाव	रुोपावाड़
लक	लकाव	लकावाड़
लड़	लड़ाव	लड़ावाड़
लण	लणाव	लणावाड़
लाड	लडाव	लडावाड़
ळाद	लदाव	लदावाड़
लुट	लुटाव	लुटावाड़
वकेर	चकेराव	चकेरावाड़
वाँट	वटाव	वंटावाड़
वाँद	वंदाव	चदावाड़
वाँस	वंसाव	वंसावाड़
वेण	वेणाव	वेणावाड़
वेर	चेराव	वेरावाड़
वेस	वेसाव	वेसावाड़
वोर	वोराव	वोरावाड़
सड़	सड़ाव	सड़ावाड़
सण	सणाव	सणावाड़
सार	सराव	सरावाड़
स़कार	सकराव	स़करावाड़
स़ुतर	स़ुतराव	स़ुतरावाड़

बाकी "अड़ाव" वाले रूप तो वागड़ी में सामान्य हैं।

कृदन्त

गुजराती आदि की तरह वागड़ी में संस्कृतोत्थ कृदन्त मिलते हैं, जैसे कि वर्तमान, भूत, भविष्यत्, सामान्य अव्ययात्मक।

वर्तमान कृदन्त—तो, ति, तु क्रमशः तीनों लिंगों में

इस प्रत्यय का विकास सं० "अत", प्रा० "अन्त" से अपभ्रंश द्वारा हुआ है। वागड़ी, भीली, गुजराती, मारवाड़ी, मेवाड़ी और मालवी में "करती" है। हिन्दी में "तो" "ता" यथा स्थान मिलते हैं।

यह कृदन्त विशेषणात्मक है। उसका जब मिश्र काल बनाने में उपयोग होता है तब इन सभी भाषाओं मे उसकी विशेषणात्मक स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। हिन्दी में तो वर्तमान काल बनाने में इस कृदन्त का ही उपयोग होता है। जैसे कि—"मैं करता हूं"। गुजराती, वागड़ी, भीली, मारवाढ़ी आदि में "नथी" के साथ की नकारार्थ रचना में वर्तमान कृदन्त का ही उपयोग होता है; जैसेकि—हुं करतो नथी (गुज०), ओं करतो नति (वाग०), मुं करतो नति (भीली), मुं करतो नथी (मार०-मेवा०)।

स० का क्रियाति पत्यर्थ प्राकृत भूमिका में लुप्त हो गया था। अर्वाचीन नव्य भारत-आर्य भाषाओं ने अपनी मध्यकालीन भूमिकाओं में अविकारी (व्यंजनात) वर्तमान कृदन्त का इसके लिये उपयोग किया है। जैसेकि—हुं करत, (गुजराती में अविकृत रूप उपर्युक्त होता है; सुरती गुजराती में "करते" और पश्चिमी सौराष्ट्रीय गुजराती में "करेत" एसा प्रयोग है), "ओं करतो" (वागड़ी), मुं करतो (भीली), मूं करतो (मार-मेवा०), मैं करता (हिन्दी)। गुजराती मे तो अतीत-कालीन नियमित भूतकाल बनाने के लिये ही इस विकारी वर्तमान कृदन्त का प्रयोग स्थापित हो गया है, जैसे कि—"जूना समयमा ब्राह्मणो त्रिकाळ संध्या करता" (गुज०), वागड़ी और भीली में भी यह प्रयोग चालू है।

वर्तमान कृदन्त का एक प्रयोग सं० के सतिसप्तमी रचना के अनुरूप उतर आया है, जहाँ वर्तमान कृदन्त को सप्तमी का अव्ययात्मक प्रत्यय लगता है। जैसेकि—"आम थतां मारुं कांई चाल्युं नहि" (गुज०)। वागड़ी और भीली में वहां सप्तमी का "ए" प्रत्यय लगता है—"मारैं करतैं तो मोटो सैं" (वाग०-भीली)। हिन्दी में यहां प्रायः करके सामान्य कृदन्त वाला "करने पर, आने पर" जैसा प्रयोग होता है।

भूतकृदन्त

यह कृदन्त भी इन सभी भाषाओं में संस्कृत की परम्परा का ही है। यह विशेषणात्मक ही है।

वागड़ी. गुजराती, मारवाड़ी, और मेवाड़ी में "कर्यो" रूप है। मारवाड़ी में "कीधो" और मेवाड़ी में "किदो" भी प्रचलित हैं; जबकि मालवी में हिन्दी प्रकृति की तरह "कियो" होता है।

जब कर्मणि रूप में "आ" लगने से अंग आकारान्त बन जाता है तब शिष्ट गुजराती की तरह "यो" लगता नहीं है और सौराष्ट्रीय गुजराती की तरह 'णो" लगता है, जैसे कि—जुवाणो, खवाणो, मराणो, कराणो वगैरह।

डॉ० तेस्सितोरी इस "आण" प्रत्यय के विषय में वर्तमान कृदन्त के "माण" की पिशल के उदाहरणों से संभवितता देते हैं; किन्तु आग्रह नहीं करते हैं।[1] इसकी संभावना सं० आकारांत अंग वाले "ग्लान", "म्लान" आदि भूतकृदन्तों की परम्परा में होना ज्यादा संभवित है।[2]

मिश्रकाल बनाने में भी भूतकृदन्त का इन सभी भाषाओं में उपयोग होता है। इनमें पूर्ण वर्तमान और पूर्ण भूतकाल में तो निश्चयार्थ है; किन्तु पूर्ण भविष्यत् काल में संशयार्थ है।

गुजराती में ह्यस्तन भूतकाल बनाने के लिये प्रा० "इल्ल" प्रत्यय की परंपरा का प्रयोग मराठी की तरह होता है। वागड़ी आदि में यह नहीं है। भीली में महाराष्ट्र के निकट के प्रदेश में इसका व्यापक रूप से प्रयोग होता है।

वागड़ी में क्वचित् "आवेल" जैसा रूप सुनाई देता है।

भविष्यत् कृदन्त

संस्कृत परम्परा अपने यहाँ सर्वथा लुप्त हो गई है और सामान्य कृदन्त में से ही इस कृदन्त की साधना की गई है, जो कर्मणि अर्थ में है।

वागड़ी, भीली और गुजराती में "करवानो", जबकि मारवाड़ी, मेवाड़ी में "करवा वालो", और मालवी में "करवा वालो", हिन्दी में तो "करने वाला" है। वागड़ी, भीली और गुजराती में "करवा वाळो" भी व्यापक रूप में प्रचलित हैं।

---

१. तेस्सितोरी (खण्ड १२६–२)

२. के० का० शास्त्री : गुजराती भाषा शास्त्र, पृ० ३६२

इन भाषाओं में अब "वालो" परसर्ग प्रभुत्व पा रहा है।

सामान्य कृदन्त

सं० "तव्य" प्रत्यय की परम्परा में इस कृदन्त का विकास है। जैसे कि—"करवो" भीली और गुजराती में यही है हिन्दी के पास यह नहीं है और क्रियावाचक संज्ञा बनाने वाले "अन" प्रत्यय का विकास मिला है।

मारवाड़ी, मेवाड़ी और मालवी में यह विकल्प से है, जैसा कि—"करवो, करणो" यह कृदन्त विशेषणात्मक है। और कर्मणि अर्थ में मिश्र भविष्यत् काल बनाने के लिए उपयुक्त होता हैं।

सं० का हेत्वर्थ कृदन्त नष्ट हो गया है और उसी प्रकार का कृदन्त बनाने के लिये इसके अविकृत रूप का प्रयोग सामान्य है।

वागड़ी में "करवा", "करवा सारु", भीली में मात्र "करवा सारु, जबकि गुजराती में "करवा", "करवाने", मारवाड़ी में "करवारे वास्ते", "करणारे वास्ते", मेवाड़ी में "करवा", "करवारे वास्ते", "करवा सारु"; जबकि मालवी में "करवाहे वास्ते", और हिन्दी कुल में "करने के लिये" रूप हैं।

अव्ययात्मक कृदन्त

संस्कृत में संबंधक अव्ययात्मक भूत कृदन्त बनाने के लिये उपसर्ग वाले धातुओं को जो "य" प्रत्यय लगाया जाता था उसके विकास में शौर सेनी के "इअ" द्वारा अपभ्रंश में "इअ" और "इ" होते हुए नव्य भारत-आर्य भाषाओं में "इ" बनकर आज ह्रस्व "इकार" के रूप में उतर आया है, जैसा कि "करि"। व्रजभाषा ने यह प्रत्यय बचा रक्खा है, किन्तु हिन्दी ने खो दिया है। और मारवाड़ी, मेवाड़ी एवं मालवी में "कर" रूप का भी प्रयोग "करि" के समानान्तर है। गुजराती में लेखन में दीर्घांत होने पर भी उच्चारण सर्वथा ह्रस्व है।

भाषाओं की लाक्षणिकता के अनुकूल "ने" या "के" परसर्ग लगाने का रिवाज है। संयुक्त क्रिया रूप बनते हैं तब ये परसर्ग प्रयुक्त नहीं होते हैं; जैसेकि "करि लिदु" आदि।

यहाँ एक विशेष कृदन्त रूप इन भाषाओं ने प्राप्त किया है, उसके बारे में कहना ठीक होगा। यह संस्कृत की क्रियावाचक संज्ञाओं में लगने वाले "अन" प्रत्यय को प्रायः "कार" लगकर बना है। दोनों के बीच में पुराने रूपों में उत्तर-अपभ्रंश

की षष्ठी का "ह" प्रत्यय आता था जो आज भी उपयुक्त होते पुराने रूपों में दीख पड़ता है। जैसे कि मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी में "करणहार" हिन्दी में सिर्फ "होनहार" में बचा है। वागड़ी, भीली और गुजराती में "करनारो", "करनार" ऐसे विकारी और अविकारी दोनों रूप व्यापक हैं। मारवाड़ी और मेवाड़ी में विकारी रूप बचा है; किन्तु इनमें "ण" बच रहा है; जैसा कि "करणारो"। ये सभी रूप विशेषणात्मक हैं।

इसका उपयोग भविष्यत् काल के मिश्र रूप में मुक्तता से होता है।

संयुक्त क्रियापद

अपभ्रंश के बाद नव्य भारत-आर्य भाषाओं का यह विकास है। वागड़ी में संयुक्त क्रियापदों का प्रयोग गुजराती का ही है।

१. वर्तमान कृदन्त साथ	२. भूत कृदन्त साथ
करतो आवँ	सँडतो जाय
खातो जाय	सँड्यो तो }
सँडतो थाय	सँड्यो सँ }
रुतो रँ	सँड्युँ करँ (अव्ययात्यक रूप)
गातो ओवँ (मिश्र काल)	

३. संबंधकअव्ययात्मक कृदन्त साथ	४. सामान्य कृदन्त साथ
करि उटँ	करवु जवँ
करि दँ (आज्ञार्थ में सीमित)	लेवि पड़ँ
खाई जाय	करवु सँ } मिश्र काल
करि आलँ	करवु ओवँ }
करि नाकँ	

रोड़ि पड़ँ, करि मेलँ, करि राकँ, करि रँ, करि लँ, करि सकँ, खाइ वँ (गुज० खाई वेसे)

अव्यय

नवीन प्रकार से अव्ययों के जो विभाग माने गये हैं वे चारों वागड़ी भाषा में व्यापक हैं। प्रायः करके वागड़ी में प्रयुक्त होने वाले बहुत से अव्यय पु० प० राज० द्वारा किसी न किसी विभक्ति अंतवाली संज्ञाओं पर से ही आए हैं। कुछ सं० प्रा० परम्परा के अव्यय भी हैं। जहाँ संभव है वहाँ मूल बताने का प्रयत्न किया जायेगा।

१. क्रिया विशेषण

सा़सुसा़स (गु० साचोसाच)

सा़ते (सं० सार्थकेन, अप०+ सत्थएँ, पु० प० राज० साथइँ, गुज० साथे)

मेळे (गु० मेळे)

कने (पु० प० राज० कन्हइँ, गुज० कने = पासे)

पुटे (सं० पृष्ठके, अप० पुट्ठइ, पु० प० राज० पूठइ, गुज० पूठे)

वँय़ (सं० वंशके, अप० वंशइ, पु० प० राज० बाँसइ, गुज० वांसे)

केड़े (गु० केडो = मार्ग; सातमी विभक्ति एकवचन
केड़े = पीछे)

अेटे (सं० अद्यस्तात्, अप० हेट्ठइ, पु० प० राज० हेठइ, गुज० हेठे = नीचे)

मोरे (सं० मुखरे, अप० मुहरइ, पु० प० राज० मुहुरइ, गुज० मोर्य = आगे)

अगा़ड़ि—पसाड़ि (गु० अगाड़ी—पछाड़ी)

ओँण (गु० ओण = इस वर्ष)

पोर (गु० पोर = आते अथवा गत वर्ष)

परार (गु० परार = आते अथवा गत तीसरे वर्ष)

फेलँवर (आत अथवा गत चतुर्थ वर्ष) यह शब्द सिर्फ भीली और वागड़ी में ही मिलता है।

आंय़ (सं० इह, अप० इहाँ, पु० प० राज० अहिँ, गुज० सौराष्ट्री आंय)

परे (गु० परे=वहां, त्यां)

पँल (पु० प० राज० पहिलइ, गु० पहेलां)

पसँ (सं० पश्चात्, अप० पच्छइ, पु० प० राज० पछइ, गुज० पछी, पछे=बाद में)

अजि (सं० अद्यापि, अप० अज्जवि, पु० प० राज० आजइ, अजी, गु० हजी)

आम (अप० एवँ० जेवँ० तेवँ० केवँ के आभास साम्य से अप० आवँ, पु० प० राज० और गु० आम)

अेम (पु० प० राज० और गुज०)—देखो "आम"

जेम—तेम (पु० प० राज० और गुज०)—देखो "आम"

केम (पु० प० राज० और गुज० —देखो "आम"

मँय़ (सं० मध्ये, अप० मज्झि, पु० प० राज० माझि, माहि, गुज० मांह्य)

वँसे (सं० वर्त्मनि, अप० विच्चे, पु० प० राज० विचि, गुज० वच्चे)

वँसाळे (देखो "वँसे" गुज० वचाळे = बीच के समय में)

कालें (सं० कल्ये, अप० कप० कल्ले, पु० प० राज० कालि, गु० काले)
ज़ारे (पु० प० राज० जिहिवारइ, गुज० ज्यारे)
तारे (पु० प० राज० तिहिवारइ, गुज० त्यारे)
कारे (पु० प० राज० किहिवारइ, गुज० क्यारे)
अवड़े (सं० अधुना, प्रा० अहुणा, पु० प० राज० हवड़ां, गुज० हमणां, हवडां, हवड़े)
अव्वार (पु० प० राज० आवारइ)
आज़ँ (सं० अद्यापि. प्रा० अज्जवि, पु० प० राज० आजइ, गु० आजे)
अवे (सं० अथवा, अप० अहवड, पु० प० राज० हवइ, गुज० हवे)
बाण्णँ (सं० द्वार, प्रा० वार परसे, पु० प० राज० वारणउँ = दरवाजा, सातवीं विभक्ति गुज० वारणे – बाहर)
नेसँ (गु० नीचे)
ज़राक (गु० जराक)
ज़रिक (गु० जरीक)
जरा (गु० जरा)
ज़राक (गु० जराक)
ज़रि (गु० जरी)
लगरिक (सं०+ लग्नाकार–, पु० प० राज० लगार, गुज० लगार, लगारेक, लगरीक)
अंसेक (= अंश मात्र)
नामेक (= नाम मात्र)
अतिक (= अल्प)
भले (स० भद्र–. प्रा० भल्ल, गु० भले)
नें (सं० नहि)
नके (सं० नहि)
उपर (सं० उपरि. अप० उप्पिरि, पु० प० राज० ऊपरि, गुज० उपर)
मातँ (सं० मस्तके, अप० मत्थइ, पु० प० राज० माथइ, गुज० माथे)
ओँसँ (सं० उच्चैः, पु० प० राज० ऊँचइ, गु० ऊँचे)
पाकति (सं० पक्ष–, प्रा० पक्ख–, पु० प० राज० पाख–
पाकँ (गु० पछी)
पाखँ (गु० पछी) [खादा पाकँ सा पीवो]
यह शब्द वागड़ी में ही प्रयुक्त होता है)
ज़ट (सं० झटिति, गु० झट)
ज़रुड़ (अरबी० जरुर)
खरेँखर (गु० खरेखर)
खरेँखातु (गु० खरेखात)

खसि़त (गु० खचीत)
स़ुें (गु० शुं)
जा़णे (सं० जाने, प्रा० जाणे, पु० प० राज० और गुज० जाणे)
खौब (अरबी० खूब)
खड़खड़ (गु० खड़खड़)
खड़खड़ाट (गु० खड़खड़ाट)
खकड़ाट (गु० खखड़ाट)
भबड़ाट (गु० भभड़ाट)
घमघम (गु० धमधम)
टपटप (गु० टपटप)
दाडि (स० दिवस–, अप० दिहअड़–, पु० प० रा० दिहाड़इ, गु० द्याड़ी)
दनरो़ज़ (सं० दिन+अरबी० रोज)
रो़ज़रो़ज़ (अरबी० रोज, रोजाना)

२. **शब्दयोगी अव्यय**

विभक्ति के अर्थ देने वाले सभी परसर्ग शब्दयोगी अव्यय हैं, जैसे कि—
वति (गु० वती)
सारु (गु० सारु)
थकि (गु० थकी)
में (गु० माँ)
उपर (गु० उपर)
मातेँ (गु० माथे)
नेसेँ (गु० नीचे)
आडे (गु० आडे)
आय़–पाय़ (गु० आस–पास)
कने (गु० कने)
सो़ड़े (गु० सोड़े)
स़ुदि (गु० सुधी)
आभ्रे (गु० पासे)
दूसरे अव्यय ये हैं—
परते (गु० पेठे)
सा़ते (गु० साथे)

३. **वाक्ययोगी या उभयान्वयी अव्यय**

दो शब्दों अथवा वाक्यों को जोड़ने के लिये जिन अव्ययों का उपयोग है वे इस संज्ञा में शामिल होते हैं, जैसे कि—

ने (सं० अन्यानि, अप० अन्नइं, पु० प० राज० अनइ, गु० अने, ने)
पण (सं० पुनः, अप० पुणु, पु० प० राज० और गुज० पण)
कँ (सं० कानि, अप० काइं, पु० प० राज० कइं, कइ, गुज० के)
तो (सं० ततः, अप० तउ, गु० तो)
तोय (सं० ततः + च, अप० तउ + इ, पु० प० राज० तउइ, गुज० तोय)
नेतो (गु० नहि तो)
केमकँ (गु० केमके)
अेटले (अप० एत्तुल्लइ, पु० प० राज० एत्तुलइ, गुज० एटले)
ज्यारे-तारे (पु० प० राज० जिहिवारइ, तिहिवारइ, गुज० ज्यारे-त्यारे)
जो-तो (सं० यतः, ततः, अप० जउ, तउ, गुज० जो, तो)

शब्दों के साथ एक व्यक्ति या पदार्थ को ही कहने के लिये "ज" (सं० एव, प्रा० जे, जेव, अप० जि, पु० प० राज० एवं, गु० ज) आता है और हिन्दी "भी" का अर्थ देने के लिये "ए" (सं० च, प्रा० अप० अ, य, पु० प० राज० और गुज० य, ए, ये) आता है। इसकी सारी परम्परा गुजराती के समान है।

४. उद्‌गारात्मक अथवा केवल-प्रयोगी अव्यय

ये अव्यय वाक्य से अलग ही प्रयुक्त होते हैं।
वा (= गुज० वाह)
अरँरँरँ (सं० अरे)
हायहाय (गुज०)
ओ (गुज०)
ओहोहोहो (सं० अहो)
हँअँ (= स्वीकार के अर्थ में) गुज०
अँहँ (= अस्वीकार) गुज०
हाव (= हा) गुज० होवे
ओवँ (गु० होवे)
ओकम (राजस्थान में प्रचलित विवेक का शब्द = हुक्म अरबी)
हट (गुज०)
ओं (= हुंकार)
खम्मा (गुज०)

तद्धित प्रत्यय (Suffixes)

पु० प० राज० की परम्परा में लिले हुए तद्भव शब्दों में तद्धित प्रत्यय प्रयुक्त मालूम होते हैं, वे निम्न प्रकार से वागड़ी में है—

१. ल—(ल—विकारी)

निम्न शब्दों में "ल" उतर आया है।

आगलो (सं०+ अग्रिलकः, अप० अग्गिल्लउ, पु० प० राज० आगिलउ, गुज० आगलो)

वँयुलो (सं०+ वंशिलकः, अप० वसिल्लउ, पु० प० राज० वासिलउ, गुज० वांसलो)

बारलो सं० +बाहिरिलकः, अप० बाहिरिल्लउ, पु० प० राज० बाहिरिलउ, गु० व्हारलो)

मँयुलो सं०+ मध्यिलकः, अप० मज्झिल्लउ, पु० प० राज० माहिलउ, गुज० मांह्यलो)

वँसलो स०+ वर्त्मिलकः, अप० विच्चिलउ, पु० प० राज० विचिलउ, गुज० वचलो)

मोरलो (सं०+ मुखरिलकः, अप० मुहरिल्लउ, पु० प० राज० मोहोरिलउ, गु० म्होरलो)

पिशल ने "इल्ल" प्रत्यय के विषय में अपने प्राकृत व्याकरण (सं० १९४, १९५) में चर्चा की है। संस्कृत में "शिथिल" आदि कुछ शब्दों में "इल" प्रत्यय दीखता है। इसका मूल द्रविड़ी माना जाता है। "ल्ल" अपभ्रंश में निश्चित रूप में मिलता है, इसी कारण वागड़ी और गुजराती में इसका "ळ" नहीं होता है।

२. ल—(लु—विकारी)

निम्न शब्दों में यह दूसरा प्रत्यय मिलता है। जैसे कि—

बगलो (स० बक–, शौर० वग–, अप०+ बगुल्लउ, पु० प० राज० वगलउ, गुज० वगलो)

मरगलो (सं० मृग–, पु० प० राज० मरगलउ, गुज० मरगलो)

कागलो (सं० काक–, शौर० काग–, यह शब्द वागड़ी में ही है)

अेकलो (सं० एक–, प्रा० एक्क–, पु० प० राज० एकलउ, गुज० एकलो)

यह प्रत्यय अप० में मिलने वाले "उल्ल" का ही विकास है। (सि० हे० ८–७–) "पोटलो" में भी यह प्रत्यय है।

३. ळ—(ळु—विकारी)

आंदळो (सं० अंध–, पालि० अवल–, पु० प० राज० आँधलउ, गुज० आंधळो)

पंगळो (सं० पंगु–, पु० प० राज० पांगलउ, गुज० पांगळो)

यह प्रत्यय अपभ्रंश में एकात्मक रूप में मिलने वाले "ल" का विकास है, इसी कारण "ल" का "ळ" उच्चारण होता है।

पातळो शब्द के विकास में भी यही "ल" है।

४. ड़—(ड़ु—विकारी)

यह प्रत्यय निम्न शब्दों में मिलता है—

कागड़ो (सं० काक–, शौर० काग–, पु० प० राज० कागडउ, गुज० कागड़ो)

गाँटड़ि (सं० ग्रंथि–, प्रा० गंठि–, पु० प० राज० गांठड़ी, गुज० गांठड़ी)

सामड़ु (सं० चर्म–, प्रा० चम्म–, पु० प० राज० चामडउँ, गुज० चामड़ुँ)

वापड़ो (अप० वप्पुडउ, पु० प० राज० वापुडउ, गुज० वापडो)

लघुता वाचक अर्थ बताने के लिये गुजराती की तरह यह "ड़" प्रत्यय वागड़ी में विपुलता से प्रयुक्त होता है।

विशिष्टता से प्रयुक्त होने वाले व्यापक तद्धित प्रत्ययों को ही मैंने ऊपर बताये हैं।

———

चतुर्थ अध्याय

अर्थ संक्रमण
(Semantics)

वागड़ी जीवित बोली है। इसका किसी बाह्य आक्रमण से नाश न हो तो वह विकास की भूमिका पर है। लोग प्रायः करके अनपढ़ हैं, अतः बोली की जो स्वाभाविकता है वह यहाँ ठीक-ठीक स्वरूप में पाई जाती है। जीवंत गुजराती भाषा के साथ साम्य रखती हुई बहुत सी खूबियाँ यहाँ दीखती हैं। जो समान शब्द वागड़ी में प्रयुक्त होते हैं उन सभी में तो वही लाक्षणिकता है। किन्तु कितनेक शब्द गुजराती में प्रयुक्त होते ही नहीं हैं, ऐसे कुछ शब्दों की यहाँ अर्थ संक्रमण की दृष्टि से थोड़ी मीमांसा की जाती है।

प्राचीन परिपाटी से देखा जाय तो शब्द के वाच्यार्थ को छोड़कर व्यंजना और लक्षणा के कारण नये अर्थ भाषा में व्यापक हो जाते हैं, वह परिस्थिति वागड़ी में भी पायी जाती है। मुहावरे प्रायः करके लक्षणा के उदाहरण हैं। कहावतों और मुहावरों में ऐसे उदाहरण सुलभ हैं। मुहावरों में देखने से स्पष्ट होगा कि अर्थ-परिवर्तन कैसे होता है, जैसे कि—

मोड़ि उपर सड़वु	=	शराव पीना
लिलँ घोड़ँ वँवु	=	भंग पीना
वानि सुोळाववि	=	वरवाद करना
सारवो करि नाकवो	=	उजाड़ देना
वेसु वियँणा	=	चूल्हे में आग नहीं लगाना
लाकड़ँ सुंारो काडवो	=	शादी कराना
ओळि करि नाकवि	=	लुटा देना या नष्ट कर देना
गाँट खावि	=	अपना निज का खर्च करना
लिलँ-पिळँ देकवँ	=	मुसीवत में आ जाना
फोरु करवु	=	पीटना
वेडें में पुजारा	=	पानी नहीं होना या खत्म होना
दाळ पण्णाववि	=	दाल में पानी डालना

यहाँ वाच्यार्थ तो अलग ही है; किन्तु लक्षणा से विलकुल नया भाव परिलक्षित हो जाता है ।

अभिनव पद्धति से विचार करने से अर्थ संक्रमण निम्न ९ प्रकार से होता है—

१. अर्थ संकोच, २, अर्थ विकास, ३. लक्षणा, ४. अर्थ-सामीप्य, ५. अर्थ ह्रास वृद्धि, ६. अर्थातिशय, ७. अर्थ-लाघव, ८. अर्थावनति, और ९. अर्थोन्नति ।

१. अर्थ सकोच

इस प्रक्रिया में शब्द का व्यापक अर्थ संकुचित बनता है, जैसे कि—

पाटिय़ु	=	कपड़े धोने का पाटिया और धोका
पाट्ठो	=	पत्रक
पापरिय़ँ	=	खटपट
पाल	=	भीलों की बस्ती
पाळो	=	खेत में किया जाने वाला क्यारा (पाला)
पित्तु	=	कलेजा
पुजा़रा	=	तपोवन-ब्राह्मण
पँजँणिय़ँ	=	भील स्त्री के पगके गहने
पोमावु	=	विकसित होना (सं० पद्म पर से)
पोसतु	=	चौड़ा
फागणियु	=	होली पर पहनने का स्त्री का वस्त्र विशेप
भावु	=	बाप के बड़े भाई की पत्नी
भावको	=	रुचि
मलाजो	=	मुलाकात
मलादो	=	मर्यादा
माय़रँत	=	शादी-व्याह में गणेश-स्थापन का स्थान
मो-माया	=	प्रेम (सं० मोह-माया का अर्थ संकोच)
राँळ	=	मजाक
वराड़िय़ु	=	चदा

२. अर्थ विकास

इस प्रक्रिया में अर्थ का विकास होता है । जैसेकि—

पड़वु	=	छोटा देव स्थान
पड़सवा	=	अनाज में से भूसा उडाने के लिये कपड़े का विशेष आकार बनाकर उससे हवा देना इसका दूसरा अर्थ है—दूषित-छाया
पड्डु, पड्डुवासि	=	साक्षी, जमानत देने वाला
पल	=	दृष्टि

पाकँर	=	वख्तर (मूल में गु० पाखर)
पागति	=	बाज़ू (सं० पंक्ति)
पापो	=	पाप
पामतु	=	तेज करना; आगे जाकर अग्नि अर्थ
बाबरु	=	कपाल, भाल
बायरँ, बाण्णँ	=	टट्टी के लिये बाहर जाना; टट्टी करना
बाणि	=	शर्त (सं० वाणी)
बलरु	=	सिंह आदि के रहने का बील या गुफ़ा
बुोमड़ियो	=	ढिंढोरा पीटने वाला
मावो	=	अफीम आदि नशे का माप या मात्रा
रकम	=	आभूषण, गहना
लपराइ	=	असत्य कथन
सड़ावा	=	ऊमरते हुए बादल

२. लक्षणा

इसका लक्षण वाच्यार्थ का छिपना और नये अर्थ का आ जाना होता है। यथा—

फोड़ा	=	कष्ट
बाळ्ढो	=	समूह
भादरवि	=	धीरे धीरे कार्य करने वाला
में ड	=	खलियान का केन्द्र स्थान
रवा-खावा	=	चाडी-चुगली करना
लपि-लपि	=	भयग्रस्त; खुशामद
लादा	=	गुलामी; सेवा
लांसा	=	अतृप्त अभिलाषा
लेंवुअँ	=	डर जाना
लँलु	=	अल्प वयस्क
लुोपवु	=	छीन लेना
लुो वावबु	=	दौड़ाना या रखड़ाना
लंका लावबि	=	साहपूर्ण कार्य करना, बड़ा काम करना
वज़वज़ि उटवु	=	दादागिरी करना
वळतियु	=	प्रत्युत्तर
सुो कावबु	=	जांच करना
वांके	=	अभाव में; के बिना
वांदा	=	अभाव; कष्ट

सामि-थाबु	=	भैंस आदि का सगर्भ होना
सतु	=	प्रकट; उजागर, खुल्ला
समकारो	=	भय

विभिन्न जातियों के लिये मज़ाक में या कटाक्ष में कुछ रूढ़ शब्दों का प्रयोग किया जाता है। ये सभी शब्द इस प्रक्रिया के अधीन हैं। जैसेकि—

गरोटा, भड़का	=	ब्राह्मण
लेंडा, लुसँ	=	बनिये
राबड़िया, टेंटा	=	राजपूत
डाँगटा, डाँगा	=	पटेल (खेती करने वाली गुजराती कोम)
लकु, सातनंबर, लप्पा, लुँद्रा	=	भील
सोडिया	=	सुथार
काटेड़ा	=	लोहार
बाँडा	=	मुसलमान
परजापति, टपला	=	कुंभकार (प्रजापति)
तुँबड़ा	=	कलाल
लवँना	=	इटीवाळ ब्राह्मण (बनजारे)
दिवा-साटणिया	=	तपोधन ब्राह्मण। वगैरह
राणा	=	हजाम

४. अर्थ सामीप्य ५. अर्थ ह्रास-वृद्धि

इनके उदाहरण मेरी नजर में नहीं आये हैं।

६. अर्थातिशय

अर्थातिशय के उदाहरण—

सतु	=	सब, तमाम (सं० सहित)
बाविएवनँ	=	सब, तमाम (सं० सहित)
सारएँ वनँ	=	सब कुछ

७. अर्थलाघव

"राजपूत" शब्द मूल में राज-पुत्र का वाचक था परन्तु अब सारी राजपूत कौम के लिए व्यापक बना है। इसी प्रकार "वोरा" (सं० व्यावहारिक = व्यापारी) शब्द मुसलमान—बोहरों के लिए रूढ बना है।

८. अर्थावनति

मूल में गौरवपूर्ण अर्थ था, वह आज कुछ घृणा के साथ विभिन्न लोगों के लिये प्रयुक्त होता है। जैसे कि—

भगतेंण	=	छीनाल
राणो	=	हजाम
वँद	=	हजाम
राव	=	चारण-भाट
जुोगि	=	एक तारा वाद्य पर गाकर भीख माँगने वाली जाति विशेष, वगैरह

९. अर्थोन्नति

इसमें सामान्य अर्थवाची शब्द गौरवपूर्ण बनता है। जैसेकि—

लाकेणु	=	भला
बावसि	=	पूज्य के लिये संबोधन। वगैरह

वागड़ी में भी भाषा-क्षमता रही है, यह बताने का यह एक अल्प प्रयत्न है और यह भारी गवेषणा का विषय बनने के सक्षम है। अर्थ संक्रमण के विपय में यहाँ मैंने सिर्फ वागड़ी को ही परिलक्षित किया है और गुजराती उदाहरण न आ जायें इसकी सावधानी रक्खी है।

पंचम अध्याय

वाक्य-विचार
(Syntax)

वागड़ी कोई परम्परा से साहित्य-समृद्ध भाषा नहीं है। लोगों के मुह पर परम्परा से उतर आई एक व्यापक बोली है। वागड में खत-दस्तावेज, चिट्ठी-पत्री, हिसाबों की वहियाँ, उत्कीर्ण लेख, वशावलियाँ ये सब गुजराती भाषा में लिखे जाते थे और उनमें वागड़ी लाक्षणिकता के उच्चारण इधर उधर लिखे हुए प्राप्त होते हैं। उन नमूनों पर से जो कुछ प्राप्त होता है, वह गुजराती प्रकार का वाक्य विन्यास है। वागड़ी के सामान्य वाक्य विन्यास को समझने के लिये तो वर्तमान में प्रचलित गद्य कथाएँ ही काम आ सकें ऐसा है। इसी कारण मैंने परिशिष्ट दूसरे में, सुनी हुई कथाएँ दी हैं, उनमें से "पाद नि पारक" (=गुज० पाद नी परख) वात यहाँ अध्याय के लिये देना समुचित समझा है—

"एक वाँणियो अतो ने एक वाँणियॅण अति। वँ जॖणँ रातरे सॖतँ तँ। अरदिक रातर थै, अॅटला में घोर में सुोर पँटा। सुोर पाद्या। वाँणियो तो सॖइ ग्योतो, पण वाँणियॅण जागतिति। इ वाँणियॅण मुोरँ भागि विनि, पण सानि रँ तो सुोर सव मालमतु लुटि ने लँ जॅ अॅटले काटि साति राकि ने विरे रे ने वुोलि—"ओं पादुँ तो लुसु-पाद पमळँ, इ (सुोरँने भाइजि) पादता तो पुड़ि-पाद पमळतु, सुोरँ पादतँ तों थानकु-पाद पमळतु, पण आ टँवरुआ-पाद कुोँण पाद्यॖ? भाजि-पाद कुोँण पाद्यॖ?" वाँणियॅण नु आवु वुोलवु सँवळि ने मुोरँ ने दाँत आवबा लागा (लाग्या), ने दाँत आवें तो सवाइ जवाय, अॅम करि ने सुोरि कर्या वनास सुोर साल्या ग्या, ने कँवा लागा (लाग्या) कँ "आ वाँणियॅण तो सार्‌रि पाद पारकँ।"

वाक्यों के जो तीन प्रकार हैं वे वागड़ी के इस सादे स्वरूप मे पाये जाते हैं, जैसे कि—

सादा वाक्य

(१) वँ जॖणँ रातरे सुतँ तँ

(२) मुोर पाद्या

(३) आ वाँणियॅण तो सार्‌रि पाद पारकँ,

ये तीनों वाक्य एक ही क्रियापद से बने हुए हैं और शुद्ध वाक्य हैं। इस उद्धरण में दूसरी किस्म के वाक्य भी हैं, उनमें पहले यहां संयुक्त वाक्य को देखा जाय—

संयुक्त वाक्य

(१) एक वाँणियो अतो ने एक वाँणियेण अति
(२) वाँणियो तो सुइ ग्योतो पण वाँणियेण जागतिति
(३) इ वाँणियेण सुोरें भागि विनि पण सानि...............
थानकु-पाद पमळतु, पण आ टँवरुआ-पाद...............पाद्य ?
(४) वाँणियेणनु आवु बोलवु...............
आववा लागा, ने दाँत आवे...............
ज़वाय...............
(५) अेम करि ने सुोरि कर्या वनास सुोर साल्या ग्या ने कँवा लाग्या...............

इन वाक्यों में "ने" और "पण" से कम से कम दो वाक्य जोड़े गये हैं। इनमें कितनेक मिश्र वाक्य भी हैं, जो सयुक्त वाक्य के अग रूप बन गये हैं।

यहाँ मिश्र वाक्य की चर्चा करते यह बताया जाता है।

मिश्र वाक्य

मिश्र वाक्य में एक वाक्य मुख्य हैं और दूसरे वाक्य गौण हैं।

मुख्यवाक्य

(१) घोर में सुोर पँटा
(२) सुोर सब माल-मतु लुटि लेँ
(३) काटि साति राकि ने धिरे रैने बोलि
(४) लुसु-पाद पमळेँ
(५) थानकु-पाद पमळतु
(६) पुड़ि-पाद पमळतु
(७) सवाइ ज़वाय

इन मुख्य वाक्यों के साथ गौण वाक्य को जोड़ने के लिये "तो" "आदिक" उभयान्वयी आता है। इससे निम्न गौण वाक्य बन जाते हैं—

गौण वाक्य

(१) अरदिक रातर थे (एटला में)
(२) सानि रेँ (तो)

(३) सुोर सव मालमतु लुटिने लै जँ (एटले)

(४) श्रो॑ पादँु (तो)

(५) इ पादता (तो)

(६) सुोरँ पाद्तँ (तो)

(७) दांत ग्रावेँ (तो)

गौण वाक्यों में कर्ता-वाक्य, कर्म-वाक्य, ग्रादि भी होते हैं। ऊपर के उद्धरण में ऐसे दो कर्म-वाक्य देखने में ग्राते हैं—

(१) श्रो॑ पादँु तो........................—"वुोलि" क्रिया रूप का यह कर्म वाक्य है।

(२) ग्रा वाँणिय॒ेण तो सुोर॒रि पाद पारकँ..............यह "कँवा लागा" इस संयुक्त क्रिया रूप का कर्म वाक्य है।

खण्ड वाक्य की रचना भी इस उद्धरण में "वाँणिय॒ेणनु ग्रावु वुोलवु स॒ँवळिने" ऐसी ग्रव्यय रूप कृदन्त की रचना है। "सुोरि कर्या वना" ग्रौर "ग्रेम करिने" ये दोनों भी खण्ड वाक्य के नमूने हैं।

प्रौढ़ भाषा में उपलब्ध ग्रनेक प्रकार के वाक्य-भेद इस निरय की बोलचाल की वोली में पाना ग्रसम्भव है।

कारक

कारक-विचार भी वाक्य विचार का ही ग्रंग है। कारकों की प्रक्रिया वागड़ी में इस प्रकार से है—

वागड़ी में ग्रपभ्रंश के विकास में पुरानी पश्चिमी राजस्थानी द्वारा परसर्गों के प्रयोग से सातों विभक्तियों के ग्रर्थ प्राप्त करने का योग मिला है। यहाँ ग्रर्थों को वागड़ी के वाक्यों का उदाहृत करके वताने का प्रयत्न है।

पहली विभक्ति

१. कर्तरि प्रयोग में कर्ता ग्रौर कर्मणि प्रयोग में कर्म पहली विभक्ति में ग्राते हैं, जैसेकि—

सुोरो रोटलो खाय॒ स॒ँ
सुोरा थकि रोटलो खवाय॒ स॒ँ

इन वाक्यों में पहले में "सुोरो" कर्ता है ग्रौर दूसरे में "रोटलो" कर्म है दोनों पहली विभक्ति में हैं। यह नामार्थ में पहली विभक्ति है।

२. ग्रो दादा, मने पैसा ग्रालो

यहाँ "दादा" संवोधनार्थ पहली विभक्ति है।

३. अकर्मक क्रियापद का अर्थ पूर्ण करने के लिये विधेय वाचक शब्द का प्रयोग होता है, जैसे कि—
परताप मेवाड़नो **राणो** अतो

यहाँ "**राणो**" शब्द क्रिया का अर्थ पूर्ण करने के लिये आया है। यह **विधेय** वाचक पहली विभक्ति है।

४. कर्मणि प्रयोग में कर्म की समान विभक्ति के नाम बताने के लिये—
में एक स़ेर दुद पिदु

यहाँ "स़ेर" दूध का नाम बताता है। यह **परिमाण वाचक** पहली विभक्ति है।

दूसरी विभक्ति

१. कर्तरि प्रयोग में सकर्मक क्रियापद का कर्म
सुोरो **रोटलो** खाय़ स़ें

यहां "रोटलो" **कर्मार्थे** दूसरी विभक्ति है।

दूसरी विभक्ति में "ने" परसर्ग लगाकर प्रयोग करने का कुछ क्रियापदों के विषय में बनता है, खास करके सर्वनाम के लिये वह स्वाभाविक है, जैसे कि—
वाग **मने** खाय़ स़े

ऐसे क्रियापदों में इतर सज्ञाओं को भी "ने" अनुग लगता है, जैसेकि—
वाग **मनक** ने खाय़ स़ें

यहाँ अर्थ कर्म का ही है।

२. काल व स्थल की मर्यादा :
डुोओ बें **कु** दोड़्यो

यहाँ "कु" (=कोस) **मर्यादा वाचक** दूसरी विभिक्ति है।

३. जब कर्म का नाम बताया जाता है तब
सुोरो बें **लुोटिया** पाणि पि ग्यो

यहाँ "लुोटिया" नाम बताता है, अतः यह **परिमाण वाचक** दूसरी विभक्ति है।

सूचना—संस्कृत में, गतिवाचक क्रियापद के साथ, जिस स्थल पर जाना हो उस स्थल के लिये दूसरी विभक्ति आती है; परन्तु वागड़ी में यह स्थिति नहीं है। वहाँ सातवीं विभक्ति ही प्रयुक्त होती है। जैसेकि—

ओुं **गाम में** जुों स़ुों अन्तर दूर हो तो वहाँ परसर्ग का प्रयोग नही होता है, जैसेकि—ओुं **परगम** जुों स़ुों।

यहाँ पुरानी प० राज० की सातवीं विभक्ति का "इ" प्रत्यय लुप्त हुआ है।
सुोरो **डुोंगर पर** जाय़ स़ें

जब ऐसा नाम विकारी अंग वाला हो तो पु० प० राज० की परम्परा जिंदा है। जैसे कि—

सुोरो वांवाळ॑ जाय् स्

गुजराती में यही परिस्थिति है। तथापि आज नवीन पद्धति से लुप्त प्रत्यय प्रयुक्त होता है, जैसेकि—

"छोकरो वांसवाड़ा जाय छे।"

तीसरी विभक्ति

१. कर्मणि प्रयोग में **कर्तार्थ में**—पु० प० राज० की परम्परा में, जैसेकि—

मनके वात करि।

भावे प्रयोग में एवं नये प्रकार के कर्मणि प्रयोग में कर्तृवाचक संज्ञा के साथ "थकि" परसर्ग अनिवार्य है। जैसेकि—

मनक थकि ज्वायु

मनक थकि लाडु खवाय् स्॑

"थकि" के स्थान पर "वति" और "एयु" परसर्ग भी वागड़ी में प्रयुक्त होते हैं, जबकि गुजराती में "थी" परसर्ग ही प्रयुक्त होता है। जैसेकि—

माणसथी जवायुं

माणसथी लाडु खवाय छे।

यह सारी प्रक्रिया स्वतन्त्र है। और प्रक्रिया की दृष्टि से वागड़ी, भीली और गुजराती में एकरूपता है।

२. हथियार-साधन के अर्थ में—

मनक **आते** खाय् स्॑

यहाँ "थकि, वति और एयु" परसर्ग भी प्रयुक्त होते हैं; जबकि गुजराती में "हाथे" के प्रयोग के अलावा "थी" परसर्ग का प्रयोग आजकल बहुत प्रभुत्व पा गया है।

३. हेतु के अर्थ में—

मारु नाक **सरदि थकि** गळ॑ स्॑

इस अर्थ में "लिद" का भी प्रयोग होता है।

४. अंगों की खामी के अर्थ में—

लालजि **पा॑गे** लंगड़ो स्॑;

कसरो **आंके** कांणों स्॑;

संकर **काने** ओंसु सांबळ॑ स्॑।

यहाँ "थकि" आदि परसर्गों का प्रयोग नहीं होता है।

५. गम्यमान क्रिया के साधन के अर्थ में—

ओॅ जाते बामुोण सॖोॅ
मुोणें बॅ पैसा मजुरि पड़सॅ
इ काळॅ वाने सॅ

६. फल बताने वाली क्रिया का समय बताने वाली संज्ञा—

बार वरे बेटो बुोल्यो ते बाप ने खोॅ

७. साथ के अर्थ में—

ओॅ विलॅ मुोंडॅ घेरॅ ग्यो

चौथी विभक्ति

१. किसी को कुछ देना हो तब जिसे देना हो अथवा जिसके प्रति क्रिया का रुख हो वहाँ चौथी विभक्ति का अर्थ बताने के लिये संप्रदानार्थ "ने" परसर्ग गुजराती की तरह ही वागड़ी में भी प्रयुक्त होता है। जैसेकि—

राजा बामुोंण ने दान आलॅ सॅ
सुोरो गरु ने सवाल पुसॅ सॅ

प्रेरक में गौण कर्म को—

जैसेकि—गरुए सुोराने सवाल सिकाड़्यो
राजाए दिवणने गाम मुोकल्यो

गुजराती की तरह "मारवु" क्रियापद के विषय में जो परिस्थिति है, वह ख्याल में लेने जैसी है—

सपाइ सुोरने मारॅ सॅ
सपाइए सुोरने मार्यो
सपाइए सुोरने मायॅु
सपाइए सुोरने लाकड़ि मारि
सपाइए सुोरने लाकड़िए लाकड़िए मार्यो

पहले वाक्य में कर्तरि प्रयोग है। दूसरे वाक्यों में कर्मणि प्रयोग है। दूसरा और पांचवां वाक्य समान हैं। पांचवें वाक्य में साधन की तीसरी विभक्ति आई है। कर्मणि प्रयोग में इन वाक्यों में पहली विभक्ति नहीं दिखाई देती है।

इसमें व्यक्ति की ओर कुछ न कुछ प्रदान का अर्थ है, याने क्रिया के फल का।

२. तादर्थ्य में—याने उसके लिये

इस अर्थ में, चौथी विभक्ति का अर्थ बताने के लिये "सारु", "वल्लॅ" और "काजॅणॅ" का प्रयोग होता है, जैसेकि—

सागड़ि काम बल्लँ खेतरे जाय् सुँ

यहाँ बीच में "ने" भी आ सकता है।

सागड़ि काम ने बल्लँ राकवो पड़ँ सुँ

जब सामान्य कृदन्त का प्रयोग होता है, तब इन परसर्गों का प्रयोग न हो तो भी चलता है जैसेकि—

सुंरा रम्मा जाय् सुँ

३. कर्ता क अर्थ में "न" परसर्ग—जैसे कि—

दादाने डुंगरपर जावु सुँ

तारँ सुं काम सुँ ?

मारँ कोय् काम नति।

४. सम्बन्ध के अर्थ में—

राजाने बँ कुंवोर अता

५. "गम". "लाग", "थ", इन क्रिया पदों के योग में "ने" परसर्ग का क्त में प्रयोग—

मने गमे सुँ

तने ठिक लागँ अेम कर

अेने खोब खुसि थै

पाँचवी विभक्ति

१. अपादान के अर्थ में—"थकि" और "एयु" परसर्ग पाँचवीं विभक्ति का अर्थ देने के लिये प्रयुक्त होते हैं, जैसेकि—

खाटे थकि—खाटेयु पाटँ बैंठु

२. समय और स्थल की मर्यादा के लिये—

मने तो पोगेइ माता सुदि जाळ उटि गै

सातवीं विभक्ति

१. अधिकरण के अर्थ में—"ए" प्रत्यय सामान्यत. प्रयुक्त होता है, जैसेकि—

राजा पाट बँटो

"ऊपर" का अर्थ देने के लिये "मातँ" (गु० माथे) परसर्ग और "भोतर" का अर्थ देने के लिये "में" (=गुजराती "माँ") का प्रयोग गुजराती की तरह प्रचुरता से और "ए" प्रत्यय वाली रचना अदृश्य बनती जाती है। जैसेकि—

राजा पाट मातँ बँटो (=ऊपर)

राजा कसँरि में बँटो (=भीतर)

२. गति का अर्थ बताने के लिये—स्थल बताने के लिये प्रायः "ए" प्रत्यय हा आता है और उसकी प्रक्रिया ऊपर दूसरी विभक्ति के अन्त में दिये हुए सूचन के अनुसार होती है।

यहाँ तक कारक विभक्ति का परिचय सुलभ बनाने का प्रयत्न किया है। छठी विभक्ति विशेषण विभक्ति होने के कारण अपना अलग व्यक्तित्व रखती है और मुख्यतया सम्बन्ध के अर्थ मे प्रयुक्त होती है। बागड़ी में प्रत्यय तो बचा नहीं है और वह अर्थ बताने के लिये गुजराती की तरह "नु" (विकारी) परसर्ग का प्रयोग होता है। कर्ता, कर्म, करण और समय की मर्यादा के अर्थ में भी यह परसर्ग काम करता है; जैसेकि—

कर्ता—मारु काम
कर्म—राजानि मुरति
करण—इ न्यातनो वाणियो स
मननो मैलो
सातिनो कासो
समय की मर्यादा—ओं सांजनो आविने बैंटो सं

समग्र कारक विचार की प्रक्रिया प्रायः गुजराती के साथ एक रूप है। समानता के कारण मैंने यहां समानान्तर उदाहरण नहीं दिये हैं। जो कुछ भी भेद है, उतना ही बताया है।

षष्ठम अध्याय

वागड़ी और निकटवर्ती भाषाएँ एवं बोलियाँ

डॉ० ग्रियर्सन ने अपने ग्रन्थ Linguistic Survey of India Vol. IX part III में डूंगरपुर बाँसवाड़ा में बोली जाने वाली वागड़ी बोली को भीली के अन्तर्गत समाविष्ट किया है। इसी जिल्द के भाग ३ में उन्होंने पृष्ठ ३८ पर इस भाषा को भीली भाषा के अन्तर्गत रखते हुए भी स्वतन्त्र बोली के रूप में इसे वागड़ी नाम तो दिया है परन्तु इसे मालवी के अधिक निकट बताई है। वे लिखते हैं—

"Vagadi is the dialect of a Bhil tribe which is found in Rajputana and the adjoining districts. In the Mewar State we find them in the hilly tracts in the South West. They are also found in the adjoining parts of Gwalior, Partabgarh, Banswara and Dungarpur, and in the north-eastern corner of Mahikantha. A few speakers of Vagadi have also been returned from Rawa Kantha (= modern Mahikantha). The following are the revised figures—

Mewar State	—	280,000
Banswara	—	74,900
Dungarpur	—	98,000
Partabgarh	—	53,000
Gwalior Agency	—	2,000
Mahikantha	—	17,400
Rewa Kantha	—	075
Total	—	525,375

Of the 53000 speakers reported from Partabgarh, 47000 are stated to use a mixed form of speech, called Mewari-Vagadi.

No specimens are, however forth coming, and **it has been found convenient to include the whole total under Wagadi.** The language of almost the whole of Partabgarh is Bhili.

Specimens have only benn received from Mahi Kantha

(= modern S. *K.*). They exhibit a *dialect which in most* partlculars agrees with malvi, *in* the *inflexion* of nouns and pronouns, the verbs substantive, and the various tenses of the finite verbs.........................

It is not, however, necessary to go into further detail. The begining of the Parable of the Prodigal son which follows will be sufficient to show how **closely Wagadi agrees with Malvi. Ek menakh ke do dawdatha.**

(१) आश्चर्य है कि डॉ० ग्रियर्सन को सच्ची स्वाभाविक बागड़ी बोली का कोई नमूना तक प्राप्त नहीं हुआ जो दिया है वह ठीक नहीं है।

(२) स्व० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाजी ने अपने "राजपूताने का इतिहास" (Vol. III Part I Page 8) में बागड़ी को गुजराती का रूपान्तर कहा है।

(३) पं० कण्ठमणि शास्त्री अपने "कांकरोली का इतिहास" Part II, भौगोलिक वर्णन, पृष्ठ ९ पर लिखते हैं—"भीलों की वागड़ा, जिसमें गुजराती का अधिक सम्पर्क है, बोली जाती है।"

(४) डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने अपनी "राजस्थानी भाषा और साहित्य" में दो नमूने (एक गद्य और एक पद्य) दिये हैं—(पृष्ठ १३, १४ पर), परन्तु असली वागड़ी से तो दोनों नमूने काफी दूर हैं।

(५) श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया ने तो अपनी पुस्तक "राजस्थानीं भाषा की रूपरेखा और मान्यता के प्रश्न" (पृ० ५) में डॉ० ग्रियर्सन का अनुसरण ही किया है। उन्होंने नमूना तो नहीं दिया, पर वागड़ को भीलों का प्रदेश और वागड़ी को भीलों की बोली अवश्य करार दिया है।

(३) डॉ० प्रबोध पंडित ने भी अपने सर्वे (Journal of the G. R. S, Vol. IV No. 2. 59 Page 58–67) में वागड़ी को भीली भाषा के अन्तर्गत रखते हुए उसी का प्रच्छन्न स्वरूप माना है।

(७) इसी विषय से संबंधित बाँसवाड़ा के श्री शंकरलाल त्रिवेदी, एम० ए०, का वल्लभ विद्या नगर संशोधन–पत्रिका पुस्तक १, अंक १, १९५७, पृष्ठ ३२ में "Religious Beliefs and customs of the Bhils of theBanswara Area"
शीर्षक लेख का कथन है--

"They (Bhils) speak the Vagadi form of language, which as a matter of fact, a dialect of Gujarati with a little sprinkling of the Malvi and Mewari dialects of Rajasthani, spoken in the adjacent regions to the east and north."

(ऊपर उद्धृत किया है कि कंठमणि शास्त्री का भी यही मत है "भीलों की वागड़ा" जिसमें गुजराती का अधिक सम्पर्क है, बोली जाती है और ओझाजी ने तो इसे गुजराती का रूपान्तर कहा ही है)

(८) Dr. T. N. Dave ने अपने The Language of Maha-Gujarat (Journal of the G.R.S. Vol. X No. 2 April 1948) शोध निबन्ध के Page 133, 72. में Dialects of the Border land के बारे में विधान करते हुए लिखा है--

"Next we come to a large patch of Bhili Languages **hemmed** in between the Gujarati language of Mahi Kantha, Panch Mahals, and Rewakantha on the Gujarat side and the dialects of East Marwar, Mewar and Malwa on the other. The Bhili dialects are the result of the fusion of Guj, and the Rajasthani languges. The Bhili dialects are more akin to Guj. because the Guj. influence is more predominating in the area than Rajasthani."

श्री दवे महोदय इसी निबन्ध के संदर्भ में पृष्ठ १०६, ३६ पर Relations of Bhlli Dialects with Guj. के अन्तर्गत लिखते हैं—"The existence of Bhili dialects on the border land between Gujarat on the one hand and Marwari, Malvi and Mewari on the other hand and their very close connection with all the above languages prove the compactness and solidarity of the Western block of speeches which may be called the Guj-Bhili-Rajasthani Block. But Bhili is more related to Guj. than to Marwari, Mewali or Malvi, because the Bhils

remained in closer touch with the people of Guj. as history tells us than, with those of Rajasthan in 14th, 15th, and 16th centuries. As a matter of fact, the Bhili languages are nothing more than the dealects of Gujarati.

1. Boundaries of the language :

The Bhili dialects for example, are Gujarati as far as Jara (South of Udepur), Dungarpur, Bansvada, Ali-Rajpur anp Barwani to the east, and they become slowly and Solwly more akin to the different neighbouring Rajasthani dialects as we go further to the east."

(६) भूतपूर्व डूंगरपुर राज्य के क्यूरेटर तथा वागड़ी के एक उपासक स्व० श्री सूरजमलजी वागड़िया ने अपने ३१-७-५६ के पत्र में मुझे लिखा था कि—" (वागड़ में) भीली भाषा अब नहीं रही और उस पर पूर्ण रूपेण वागड़ी का प्रभाव पड़कर वह वागडी ही बन गई है ।—वागड़ी को भीली मानी जा रही है । इसे आप अपने महा-निबन्ध में पूर्ण रूपेण समाप्त कर देवें । वागड़ी बोली को डॉ० ग्रियर्सन और उसकी लेखनी की छाया पर निर्भर रहने वाले कुछ विद्वान भीली बोली बतलाते हैं, जो ठीक नहीं है । वागड़ में भीली वोली अन्य जाति-विशेष के लोगों के आने से पूर्व अवश्य विद्यमान थी,—इस समय प्रायः भील लोग जो बोली बोलते हैं वह वागड़ी से अत्यधिक प्रभावित है, और वागड़ी से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है ।—अब भीलों की कोई स्वतंत्र बोली नहीं रही । वे अपनी भीली बोली दीर्घ समय से भूल चुके हैं । इस समय वे जिस बोली का प्रयोग करते हैं वह वागड़ी वोली ही है, जो अन्य जाति-विशेष की है । इस प्रकार वागड़ में भीली नहीं, वागड़ी बोली का ही प्रचलन हैं ।"

वागड़ी के विषय में ये उपर्युक्त विभिन्न मन्तव्य अवश्य ही विचारणीय हैं; परन्तु जैसेकि सात अन्धों ने एक ही हाथी को सात विभिन्न स्वरूपों में समझा, उसी प्रकार यहाँ भी ये सभी लोग आंशिक रूप में अवश्य ही ठीक लगते हैं, परन्तु समग्र दृष्टि से देखने से वे मूल विषय की वास्तविकता से कुछ दूर रहते हैं ।

वागड़ प्रदेश की जन-बोली के विषय में विचार करने से पता लगता है, कि स्थूल रूप में उसके दो भेद हो सकते हैं—

१. समग्र वागड़ के भीलेतर लोगों की और देहाती भीलों की एक भाषा, और

२. मूल पालों में ही बसते चले आने वाले भीलों की भाषा ।

पालों में बसने वाली भील जाति अपनी विशिष्ट बोली का व्यवहार करती है, जो सामान्य भीली भाषा का प्रकार है। वे जो बोलते हैं, वह इतर जातियाँ समझ सकती हैं; किन्तु उनके कुछ उच्चारण रूप प्रक्रिया एवं शब्द समूह वागड़ी की अपेक्षा भीली की ओर अधिक जाते हैं। वागड़ के पूर्वोत्तर भाग में "कटारा" प्रदेश में जो "मेणा" नाम से ख्यात भील लोग बसे हैं वे कटारी भीली बोलते हैं। वहाँ भीलेतर लोग तो वागड़ी ही बोलते हैं।

बाँसवाड़ा के पूर्वोत्तरीय प्रदेश में पलवाड़ी भीली पड़ी हुई है; जहाँ कटारा के मेणा–भीलों के सम्बन्ध के कारण पलवाड़ी भीली में कटारी का मिश्रण दीखता है।

इतर जातियाँ स्पष्ट वागड़ी का ही व्यवहार करती हैं। जो भील लोग पालों में न रहकर देहातों में बस गये हैं, उनकी भी साधारण बोली तो वागड़ी ही है। सरहदों की वागड़ी पर यथा स्थान छप्पन की मेवाड़ी; मेवाड़ी; मालवी और गुजराती का असर अधिक दीख पड़ता है। जैसेकि डूंगरपुर और बाँसवाड़ा के समस्त जिले तथा मेवाड़ के खड़ग और नीचली भोमट के समस्त क्षेत्र तथा चूंडा के कुछ भाग। कल्याणपुरा आदि के निवासी तो बिलकुल वागड़ी बोली ही बोलते हैं। इसके अतिरिक्त मुख्य सूंथ और रामपुर शहर के ७५ प्रतिशत लोग भी वागड़ी ही बोलते हैं शेष मेवाड़ के छप्पन और मेवल के दक्षिणी भाग के निवासी वागड़ी के मिश्रण से मेवाड़ी प्रतापगढ़, सैलाना और रतलाम के पश्चिमी भागों तथा झाबुआ के उत्तरी भाग के निवासी वागड़ी के मिश्रण से मालवी; झालोद, कडाणा और लूनावाड़ा के उत्तरी भागों तथा मोडासा और ईडर के पूर्वी भागों तथा घोड़ादर और पाल (पोलां) के निवासी वागड़ी के मिश्रण से गुजराती भाषा बोलते हैं।

गुजरात के इन क्षेत्रों की भाषा पर तो वागड़ी का इतना अधिक प्रभाव पड़ गया है कि इसके कारण इन क्षेत्रों की बोली को लोग प्रायः ढेढ़ गुजराती की संज्ञा देते हैं।

अन्य जाति विशेष (भीलेतर) के लोगों के इस प्रदेश में आने के पूर्व भीलों की जो भीली भाषा थी और आज भी पालों में बसने वाले भीलों की जो बोली बनी हुई है, उसका स्वरूप निम्न कुछ वाक्यों तथा शब्दों से पाया जाता है—यथा—

भीली		वागड़ी
१. हरो पइ ने कणु वरगे रखे	:	दारु पिने केने साते लड़ँ नके
अर्थात् शराब पीकर किसी से झगड़ा मत करना।		
२. अक्कल कणाये बापनी नी है	:	अक्ल केनाए बापनि नें सँ
अक्ल किसी के बाप की नहीं है।		
३. कुआ मांय उतारी ने नेज वाडी	:	खुवा में उतारि ने नेंज़ वाडि
कुएँ में उतार कर रस्सी काटी।=(विश्वासघात किया)		

४. अेक अतवार बे घोडँ नी बी हे : अेक असवार वँ घुोड़े ने बँ
एक सवार दो घोड़ों पर नहीं बैठता ।

५. दन्या मांय रेवू तो हांप वारो फूंआटो राकवो : दुनियँ में रँवु तो साप वाळो फुँपाटो राकवो
दुनिया में रहना तो सर्प जैसा फुंफाटा रखना ।

६. बलत्याये हूं बालवो : बळता ने स़ुों बालवु
जलते हुए को क्या जलाना ।

७. नोकरी तरगारा नी धार है : नौकरि तरुवारँनि धार सँ
नौकरी तलवार की धार है ।

८. लायमायँ लाय नी लगाडवी : लाय़ में लाय़ नें लगाड़वि
आग में आग नहीं लगानी ।

उच्चारण एवं रूप प्रक्रिया के विषय में ऊपर के अध्यायों में यथा स्थान साम्य–वैषम्य बताया गया है । शब्द स्वरूप भेद की दृष्टि से कुछ नमूने नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं—

भीली	=	हिन्दी	—	वागड़ी
अकल	=	अक्ल;	—	अक्कल
कणाये	=	किसी के;	—	केनाए
नी	=	नहीं;	—	नें
मांयें	=	अन्दर;	—	मँए, में
नेज	=	डोर, रस्सी;	—	नेज, राँड़ि, राँ
वाडी	=	काटी;	—	वाडि, कापि
असवार	=	सवार;	—	असवार
बी है	=	वैठता है;	—	वँ सँ
दन्या	=	दुनिया;	—	दनियँ
हांप	=	सर्प;	—	स़ाप
बलत्याए	=	जलते हुए को;	—	वलताने
तरगारं	=	तलवारों;	—	तरुवारँ
लाय	=	अग्नि, आग;	—	लाय़
पानकलियो	=	पिछली रातका;	—	वँएलि रातरनो
वँ वँ	=	दुःखी, परेशान;	—	वँवँ, लासार
फाइले	=	पीछे;	—	वँए, पसँ, पुटँ
ओडाणी	=	फंस गई;	—	फसाइ गइ

जाले	=	बराबर;	—	बरोबर, सरका
जोगे	=	अवसर;	—	ओसर, मोको
जोगो	=	लायक	—	जुगो
अवडो	=	उपद्रवी;	—	उत्पाति, आटकाटियो
धीजुं	=	परीक्षा;	—	परक
तीनुं	=	भीगा हुआ;	—	पलप्यु, भेनु
हाई	=	क्यों;	—	केम, सुंकाम
तरकी	=	रक्षक;	—	सोकिदार, वलावो
अलोटा	=	खतरनाक;	—	भो (भय) वाळो
बरोडे	=	दीवाल पर	—	भेत उपर
रेलां	=	बिवाई;	—	काडि
लांपा	=	छोटा;	—	नानो
हरो	=	शराब;	—	दारु
रोळ	=	रार, झगड़ा	—	लड़ाइ, राँळ
हांवीने	=	छिपाकर;	—	संपाड़िने
हेरे	=	ढूंढे	—	सजवु
कातरियं-वतु	=	हजामत;	—	जामत, कातरियाँ, वतु
बळंग	=	गु. वलगवु, जगड़ा;	—	वलगँ, सोटँ
पईने	=	पीकर;	—	पिने
कणु	=	किसी से;	—	केने थकि
रके-रखे	=	मत, नहीं;	—	नके
सोंटी	=	छोटी;	—	नानि
मोटी	=	मोटी, बड़ी	—	मोटि
रीहनणे	=	रीसाणे;	—	खिजनणे
कोण	=	कौन	—	कोण
मनमणे	=	मनाने के लिये;	—	मनमणे
हाहु	=	सासु	—	साउ
बळुं	=	लौटना;	—	वळुं, फरुं
सुंदड़ी	=	चूंदड़ी;	—	सुंनाड़ि
वेड़	=	घर;	—	घोर, घेरँ
बीरा	=	भाई;	—	भाइ
धुनां	=	बहुत;	—	घोन
केड़ो	=	मुट्ठी;	—	कोड़ो भराय
पगल्यां	=	पग;	—	पगले, पोग

भीली	वागड़ी
"अमाँ भील केवां ने	"अमें भिल कँवें सूं नें
डुंगरामांय रहां ।	डुंगरें में रेंसूं ।
असल अमारे बाप-दादा आवेला हे,	असल अमारा बाप-दादा आवेल सूं,
तीवा डुंगरा अमारा केवा ने अमारे	तार थकि डुंगरा अमारा कँवेंयू नें अमारो
वीवा अेवो थाअे के वोरने गेरहा	विवा अेवो थाय् कँ वोर ने घेरँयू
मा-बाप भाई ने काका भेगा थई	माँ-बाप भाइ ने काका भेगा थै
ने लाडी जोवा नीकले, जणे गाम	ने लाडि जुोवा नेंरें, जँए गाम
लाडी गमे तणे गेर जाई ने पुसे के	लाडि गमँ अेणें घेरँ जाइ ने पुसँ कँ
"तमारे सूरी ने मारे सोरा हार हगाई	"तमारि सुोरि नि मारा सुोरा साते
करवी हे ।" ने लाडी ने माँ-बाप	सगाइ करवि सूं ।" ने लाडि ने माँ-बाप
गमे तो "हां, हगाई करवी हे"	गमे तो "सूंअे, सगाइ करवि सूं"
अेम कहे । पसे कलाल ने गेर हो हरो	अेम कँ । पसे कलाळ ने घेरँओ दारु
अेक रूपी आनो मगावी हगळां पाइ ने	अेक रुपिआ नो मंगावि सूंगळँ ने पाइने
वोर ने मां-बाप पासां अरणने गेर आवे	वोरनँ माँ-बाप पासँ अेर्णेने घेरँ आवें
ने वीवा करे········ ······ "	ने विवा करें···· ······ "

इन नमूनों पर से एक वस्तु स्पष्ट होगी कि वागड़ी का भीली के साथ संबंध है । बहुतेरा साम्य भी दीखता है तथापि रूप रचना की दृष्टि से वागड़ी अपनी पृथक विशेषता रखती है और गुजराती की ओर अधिक ढलती नजर आती है । गुजराती में ऊपर का नमूना इस प्रकार से आएगा—

"अमे भील कहेवाईए छीए अने डुंगराओमां रहीए छीए । असल अमारा बाप-दादा आवेला छे त्यारथी डुंगरा अमारा कहेवाय अने अमारो विवाह एवो थाय के वर ने घेर थी मा-बाप भाई ने काका भेगा थईने छोकरी ने जोवा नीसरे (नीकळे), जे गाममां छोकरी गमे ते घेर जईने पूछे के "तमारी छोकरीनी मारा छोकरा साथे सगाई करवी छे ।" अने छोकरीने मा-बाप गमे तो "हा, सगाई करवी छे" एम कहे । पछी कलाल ने घेर थी दारु एक रुपियानो मगावी बधांने पाईने वरनां मा-बाप पाछां एमने घेर आवे अने विवाह करे··· ········।"

देखने से तुरन्त पता लगेगा कि वर्तमान तृतीय पुरुष बहुवचन में सानुनासिक रूप वागड़ी की अपनी लाक्षणिकता है और पुरानी पश्चिम राजस्थानी के साथ सीधा जनक-जन्य सम्बन्ध रखती है । इससे जो तत्व निकलता है वह तो यह है कि वागड़ी आज की गुजराती भाषा से सीधी नहीं उतर आई । पुरानी पश्चिमी राजस्थानी याने मध्यकालीन गुर्जर भाषा से दो समान स्त्रोत चले आये हैं वे एक ओर वागड़ी और दूसरी ओर गुजराती भाषा की विभिन्न बोलियाँ हैं । वागड़ी में जो पुराना अंश बचा

है, उसका कारण भी बहुत स्पष्ट हो जाता है कि पुरानी पश्चिमी राजस्थानी किंवा मध्यकालीन गुर्जर भाषा बोलने वाले लोग गुजरात की भूमि से विशाल वागड़ प्रदेश में जाकर ठहरे और भीली के सम्पर्क में आए। अपनी पुरानी लाक्षणिकता रखते हुए, भीलों के साथ व्यवहार में कुछ कुछ भीली अंश के अधीन बने और जो एक रूप बना उसकी परम्परा आज की वागड़ी में उतर आई है। वागड़ी बोली; भीली और गुजराती के बीच सेतु जैसी है वह इस कथन से पुष्ट होता है। पूर्व के प्रकरणों में बताये गये साम्यों से भी यह बात सिद्ध होती है।

भीली के विषय में तो इतना ही कहा जाय कि गुजराती से पूर्ण प्रभावित ऐसी भीली ही प्रान्त में निकटवर्ती बोलियों से प्रभावित है। जबकि वागड़ प्रदेश की वागड़ी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व आज तक अपनी विशिष्टता से सुरक्षित रख सकी है।

मारवाड़ी, मेवाड़ी और मालवी का प्रभाव भीली बोलियों पर अपने-अपने प्रान्त में अवश्य ही दिखाई देता है, किन्तु वागड़ी पर इनका सीधा कोई प्रभाव नहीं है। हाँ, सरहद की वागड़ी पर शब्द समूह का असर अवश्य है, किन्तु उच्चारण एवं रूप रचना पर नहीं।

उपसंहार

सच बात तो यह है कि प्राचीन काल से वागड़ का सारा ही प्रदेश भीलों से भरा हुआ था। दो हजार वर्षों में वागड़ देश में अनेक प्रजाओं के आक्रमण और आगमन होते रहे हैं। पिछले एक हजार सालों का इतिहास देखने से भी निकटवर्ती प्रदेशों में से कभी गुजरात का वर्चस्, कभी मेवाड़ का वर्चस् तो कभी मालवे का भी वागड़ पर आधिपत्य रहा है। गौर्जर अपभ्रंश, शुरु में मारवाड़ में व्यापक थी वह आगे बढ़ती-बढ़ती गुजरात, वागड़, मालवा, निमाड़ और खानदेश तक प्रभुत्व पा गई थी। इस जड मे भीली भी आ चुकी और उस पर भी गौर्जर अपभ्रंश की आगे विकसित हुई शाखाओं का आधिपत्य चालू ही रहा। वागड़ में विशेष करके आज जो प्रजाएँ दीखती हैं उनके बारे में विचार करने से वागड़ी में क्यों विशेषता प्रविष्ट हुई इस बात का भी पता चलेगा। गुजरात से औदीच्य ब्राह्मण. बनिये. पाटीदार, मुसलमान, दाउदी बोहरे, कंसारे तथा अन्य जातियाँ उत्तरोत्तर आ बसी। मारवाड़ से इटीवाल ब्राह्मण तथा अन्य लोग आये, मेवाड़ से मेवाड़ा ब्राह्मण, राजपूत तथा चाकर-हजुरी आदि लोग आये, तो मालवा से श्रीगौड़ ब्राह्मण वगैरह भी आये। ५०० साल पूर्व इन प्रदेशों में भापा की एकता थी। भिन्नता का प्रवेश होने के बाद जिन प्रजाओं का यहाँ प्रभुत्व ज्यादा रहा इनकी विकसीत भापा का स्पर्श यहाँ विशेप रूप में रहा और वागड़ी का स्वरूप देखने से ही पता चलता है कि पुरानी पश्चिमी राजस्थानी याने मध्यकालीन गुजर भाषा का स्पर्श यहाँ अधिक मात्रा में होता रहा और प्रभुत्व पा गया। जबकि मेवाड़ी और मालवी का असर सीमा प्रान्तों में मात्र शब्द विनिमय में ही रहा। वागड़ का पर्यटन करने से हमें इस बात का अनुभव हुआ है।

लोकगीतों में खास करके मेवाड़ी शब्दों का असर क्वचित् दिखाई देता है यह इस निकटता का परिणाम है। ढोली-नगारची कौमों की स्त्रियाँ बड़े-बड़े कुटुम्बों में मांगलिक प्रसगों में गाने-बजाने और नाचने के लिये जाती हैं। इन लोगों का आगम मेवाड़ के राजवंशियों के कारण है। डूंगरपुर और बांसवाड़ा का राजवंश मेवाड़ी शिशोदिया है। और कितने ही जागीरदार भी इस वागड़ देश में मेवाड़ी राजवंश के हैं। इन गाने वालियों में इसी कारण कभी-कभी मेवाड़ी शब्दों का दर्शन होता है। बाकी उत्तर गुजरात के मांगलिक गीतों एवं वागड़ के मांगलिक गीतों में कोई भिन्नता नहीं है। प्रथम परिशिष्ट में दिये गये गीतों, भजनों एवं "गलालेंग" काव्य में कहीं

कहीं मेवाड़ी शब्दों का दर्शन होता है इसका भी यही कारण है। जोगी लोगों पर भी राजवंश का असर कुछ न कुछ प्रमाण में थी ही किन्तु जीवन्त बोली देखने से तो कोई भ्रम नहीं रहता है। और वागड़ी गुजराती भाषा के समानान्तर चली आती गुजराती भाषा से अत्यधिक संबंध रखती बोली स्पष्ट रूप में सिद्ध होती है।

वागड़ी का मुद्रित साहित्य यों तो खास कुछ नहीं था, किन्तु अभी-अभी कुछ प्रयत्न शुरू हुआ है। मावला हरि मन्दिर के आचार्य देवानन्दजी की ओर से 'भाव-साहित्य'' में से एक छोटी "आरती-संग्रह" प्रसिद्ध हुआ है, जिसमें गुजराती पर वागड़ी की स्पष्ट छाया दीख पड़ती है। मैंने दूसरे प्रथम परिशिष्ट के अन्त में इस संग्रह में से एक आरती दी है। दूसरा एक समर्थ प्रयत्न बाँसवाड़ा के श्री बाबा लक्ष्मणदासजी की ओर से हुआ है। उन्होंने श्री विनोबा भावे की दो छोटी पुस्तिकाओं का और सुविख्यात "गीता-प्रवचनों" का सुमधुर अनुवाद वागड़ी में करने का प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न जरूर ही उच्च कोटि का है, किन्तु वागड़ी के स्वभाविक उच्चारणों को लिपि-बद्ध करने की शास्त्रीय परिपाटी का अपरिचय होने के कारण, वागड़ी इसके स्वाभाविक स्वरूप मे इसमें मूर्त नहीं हो सकी है। इससे एक फायदा जरूर हुआ है कि वागड़ी बोली को शिष्ट भाषा की कोटि प्राप्त होने की सरलता है। अनेकानेक संस्कृत तत्सम शब्दों का उपयोग इस ग्रंथ में हुआ है, और यह भी वागड़ी के साथ एकरूपता से। इस ग्रंथ की शास्त्रीय परिपाटी से मुद्रण कराया जाय तो यह ग्रन्थ वागड़ी को "भाषा" के स्थान पर रखने में सीमा स्तम्भ बन जाय।

स्वर्गीय श्री सूरजमलजी वागड़िया ने वागड़ के लोकगीतों तथा लोकोक्तियों आदि का संग्रह तथा सम्पादन शुरू किया था, किन्तु वे अकाल काल कवलित हुए अतः वे सिर्फ एक ही पुस्तिका "वागड़नो वरात" का प्रकाशन करा सके। इनकी लोक गीतों पर की पुस्तक प्रेस मे ही अधूरी पड़ी रही सुनी गई है।

इन दोनों विद्वानों के प्रयत्न को याद न करूँ तो मेरे महा-निबन्ध का कार्य अपूर्ण ही समझा जाय।

नोट—'वागड़ना लोक गीतो' मेरी पुस्तक हाल ही में गुजरात राज्य लोक साहित्य समिति ने गुजराती में प्रकाशित कर दी है।



परिशिष्ट : १

गीत

(१)

सालो गजानन्द ज़ोसि–आटे जाइए
भनड़ि ने आसँ आसँ मुरतँ लै आवँ गजानन्द·······

सालो गजानन्द गाँदि–आटे जाइए
भनड़ि ने आसँ आसँ अन्तरँ लै आवँ गजानन्द·······

सालो गजानन्द बजाजि–आटे जाइए
भनड़ि ने आसँ आसँ पड़लँ ल आवँ गजानन्द·······

सालो गजानन्द सोनि–आटे जाइए
भनड़ि ने आसँ आसँ गेणुलँ लै आवँ गजानन्द·······

सालो गजानन्द माळि–आटे जाइए
भनड़ि ने आसँ आसँ फुलड़ँ लै आवँ गजानन्द·······

सालो गजानन्द मोसि–आटे जाइए
भनड़ि ने आसि आसि मोसड़ियँ लै आवँ गजानन्द·······

सालो गजानन्द मेडुळिँ–आटे जाइए
भनड़ि ने आसँ आसँ मेडुळँ लै आवँ गजानन्द·······

सालो गजानन्द जोसि–आटे जाइए
भनड़ि ने आसँ आसँ लगनँ लै आवँ गजानन्द·······

(२)

लिलु सुँ रँ वर्कोंणियँ रँ पिळि सरणँने दाळ·······
लिलि–पिळि केसरिया वरनि जाने आवोजि भनड़ा वरदँ अमारि
लाडि ने दादँजियँ लगनँ लकाव्यँ रँ लकसँ पिपळ पान·······
वारँ लकसँ सोमवारँ (कँ) तँत एकादशि·······

लिलु सुं रैं वकेंणिय् रैं पिळि सणँनि दाळ........
लाडि ने विरँजिय् लगनँ लकाव्य् रैं लकसँ पिपळ पान........
वारँ लकसँ सोमवार (कँ) तँत एकादसि.......
लिलि–पिळि केसरिया वरनि जाने आवोजि भनड़ा वरदँ अमारि... ....

(३)

रैं दाड़ो उग्यो रैं केसरियानि सरणे कँ वाँणु वाय् —२
रैं पोड़या जागो रैं लाडकड़ाना वापो कँ वाँणु वाय् —२
रैं तमे लेजु रैं दातुँणिय् ने जारि कँ वाँणु वाय् —२
रैं दातुँण मोड़जु रैं तुळसि ने क्यारे कँ वाँणु वाय् —२
रैं तमे लेजु रैं सरि रामनु नामे कँ वाँणु वाय् —२
रैं तमे जाजु रैं जोसिड़ा ने आटे के वाँणु वाय् —२
रैं तमे लावजु रैं लगनँ वँ–स्यारँ कँ वाँणु वाय् —२
रैं पँलु सड़ँ रैं लाडकड़ा ने सरणँ कँ वाँणु वाय् —२
रैं विजु सड़ँ रैं लाडकड़ि ने सरणँ कँ वाँणु वाय् —२

(४)

सौए दरजि आइवा इ —२ कुँण दरजि ने आइवा लिलि काँसळि
सिवज् रैं दरजि काँसळि —२ मारँ मोती वाइ परमण रैं लिलि काँसळि
खड़पे ने खड़पे घुगरा —२ अने अेड़ँ मोवन मोर रैं लिलि काँसळि
घम घम वागेँ घुगरा —२ अने जप जप उडेँ मोर रैं लिलि काँसळि
सिवज् रैं दरजि काँसळि —२ मारँ तुळसी वाइ परमण रैं लिलि काँसळि

(वहनों के नाम के साथ इसी प्रकार आगे चलता है)

(५)

आजँ मारँ मादळ करँ रैं रणकाटो
वाजँतु वाजँतु नगरि मेँ आव्यु
राय् रैं कुँण भाइ नु घोर कैयु रैं
आँगणँ सोरि ने वायरँ विजँरि

सोपाड़े वला दिवळे रँ.... ...
मोकलो तो सामि अमें पियोर जावँ
अमारा दादाजि घँरँ वरघोड़ि रँ
जेवि स् लँवड़ लँवोळि मेंटि
एवि तमारँ वापा घँरँ वरघोड़ि रँ
एवा मसरका मत वोलो सामि
जेवि स् दुद में साकरटि में
एवि अमारँ वापा घँरँ वरघोड़ि रँ

भजन

(१)

ओ मिरँ वाइ सुोनानो गडुलो मिरँ ने आत सरवरिए पाणि निसय् सो
ओ मिरँ बाइ डावँ रँ कोळँ मरुआ मोगरा जमणँ रँ कँणँ दाड़म द्राकँ गणँ
ओ मिरँ वाइ दाड़मिया नँ फुल दस-विस सँपा रँ वाळ एकँ गणु
ओ मिरँ बाइ मुरकियो रटँ रँ वारँ मास संत रँ वाळि एकँ पळँ गणि
ओ मिरँ वाइ रँटियो फरँ रँ वारँ मास एन्द्र वरसँ तो एकँ घड़ि गणि
ओ मिरँ वाइ मुरकियो पुमँ रँ मिरँ नँ वात कोंण रँ दुकथि मिरँ दुवळँ
आगो जारँ पापिड़ा गमार तारँ ने मारँ प्रितँ कसि तो केम पुमँ वात
ओ मिरँ वाइ मातँ रँ मांदि स् पस-रँग पाघ लेलाड़ँ मोति तपि रय् सो जि
ओ मिरँ वाइ खन्दँ रँ वर्यो स् लाल रुोमाल पाँगँ में पँरि स् पावड़िय् सो
ओ मिरँ वाइ जुोता रँ सामळियो आपनि वाट मिरँ ने गिरदारि आवि मल्या
दोय् आत जोड़ि मिरँ वाइ वोलिय् संतँ ने अमरापुर में वास सो जि

(२)

रोणिजा थकि रैं जाणैं बाबो आवियो अरजि ने पुसैं सँ पुसणॅ
केनो रैं वाजॅ सँ अरजि दावड़ो कँनि रैं सारैं बाकरियँ
ओंतो वाजॅ ों रैं गुजर दावड़ो भावि बकरियँ सरावैं
थुाड़ुक थोड़ुक अरजि दुद पावजो सादु भुक्यो आवियो
सोसो मैनॅनि बाकड़ि दुद कण-वद काडुं सो
समरत ओवो तो गरु मारा वराज्या तुंबड़ि दुदे भरैंणि सो जि
ओंतो जाणुँ कैं बाबो जादु खोरियो बाबो मल्यो सँ अन्याड़ि
दुदैं काडयु सँ अरजि दावड़ा तुंबड़ि में तमें खिरैं पकावो
अगनि लागैं ने तुंबड़ि बळि जावैं दुद रिटाइ जावैं सो जि
अगनि लगाड़ि अरजि दावड़ँ तुंबे खिरैं पकावि सो जि
ओँ तो जाणोँ कैं बाबो जादु खोरियो बाबो मल्यो सँ अन्याड़ि
खिरैं बणावि अरजि दावड़ा खिर में साकर नकावो
सो सो कुो मातैं गरु मारा सॅर वसैं वन मे साकर क्यँ थकि सो
धोवला भरो रे अरजि रेतना खिर में सकार नकावो
रेतैं नाकि ने गरु मारा खिरैं पकावि.........
धुोबलो भरि ने अरजि खिर पियो थोड़ि अमने पो सो जि
खिरैं खादी ने अरजि केवु बोल्या खिर में साकर गुलैंणि
ओँ तो जाणुं ते बाबो जादु खोरियो बाबो मल्यो सँ अन्याड़ि
खिर खादि सो अरजि दाबड़ा थोड़ु पाणि पावो सो जि
खुवा-वावड़ि सो गरु वेगळँ पाणि कणवद लावुँ सो जि
तुंबड़ि लैं ने अरजि डुंगरि सड़ो खोरा में बगलु वियँणु सो जि
डुंगरे सड़ि ने अरजि नेसैं जोयु गंगा उलटे भरैंणि
बेंसैं जोइ अरजि विसार करैं जेट-वैसाक में पाणि क्यँ थकि
ओँ तो जाणुं रैं बाबो जादु खोरियो मल्या रांणिजा वाला राम सो जि
पैलो एलुोळो अरजि दियो तारजो पैला जुगमें
बिजो एलुोळो अरजि दियो तारजो बिजा जुगमें
तिजो एलुोळो अरजि दियो तारजो तिजा जुगमें
सोतो एलुोळो अरजि दियो तारजो सोता जुगमें

पाणि लावि अरजि आपियु दोवारिकँ ना नात ने
पाणि पाइ ने अरजि सरणे पड़या कँ आवुं आपने लारँ सो जि
काजळि वन में तारि बकरि सो वाघ-वरु लाइ जाय सो
गायँ ना गोंवाळि विरा तने वेंदवुं घड़ि बकरियँ थामो सो जि
पासु फरि ने अरजि जोय तो राम रोणिजे सिदार्या सो
दोय आत जोड़ि ने अरजि बोलिया सँतनँ दोवारिकँ में वास

(३)

जदुपत माता जसोदा जगाविया जि रँ
जागो जुगना नात तम जाग्यँ तो सर्वे जागसें रुड़ि सड्इ परवात
जागो जागो रँ दिना नातजि जि रँ
जागो नन्दे कोंवोर तम जागँ तो सर्वे जागसें पिळि सड्इ परवात
दातोंण जारि तो तुळसि-क्यारे पड़यँ जि रँ दातोंण मोड़ो दिनानात
ताँबा कोण्डि सरि ने जले भरि अस्नन करो दिनानात
पिळँ पितँवर सरि ने पँरवा जि रँ रतने जड़या सेंगासण
ओसँ आलो ने सरि ने बँसणँ ने परोसो थाळ
बतरि भोजन तेतरि स्याक कर्य जि रँ अरोगणँ पदारो दिनानात
थाळँ परोसि पदमणि जाँजर ने जणकार
जमि-जुटि ने वालँ सळ कर्य जि रँ कोयक ल्यो मुकवास
लवेंगँ सोंपारि डोडा-अँलसि पाकँ पानँ पसास
मक्रि-वलोंणँ माता जसोदा करि रयँ जि रँ जगड़ा करें दिनोनात
सतुभुंज ने सड़ि अँया तणि रिस वालो वळग्या अँया तणँ आर
गोळि फोड़ि रँ वालँ मक्रि तणि जि रँ कटका किदा सें विस
मक्रि सँगलँ वै गयँ जि रँ माँकण नि माँदो पाळ
मक्रि पियोरँ नानँ वासरु जि रँ माकण खाओ ने गोंवाळ
धेनँ सोड़ावि वालो संसयाँ धेनँ सराववा जें
जेंम जेंम गौए सरि रैं जि रँ जेंम जेंम रोवें नन्दे कोंवोर
धेनँ वोलावें सरि राम सामना जि रँ वाँसळि वगाड़ि मोरार
धेनँ सरावें सरि राम सामना वेनड़ा वन में

मुोकड़ँ वज़ावें वालो वाँसळि ज़ि रँ ओळि खेलो दिनानात
सुोळँ सणगार तो गुोपि करि रयँ ज़ि रँ मश्रि वेसावण ज़ँ
मश्रि भरिसँ अनि माटकि रतने ज़ड़या सेंगासेंण
लाँबि नज़र सरि राम सामनि ज़ि रँ कोयक आवंति ज़ावें नार
कँ तो कँवाय अैन्द्र घेरँ अवसरा कँ तो कँवाय रँ आबा-विज़ळि
पिळँ पितम्बर वालो पकड़ि रया मश्रि वेसावण ज़ाय
आड़ा फरि ने वालो उबा रया ज़ि रँ मश्रि नु लेसँ दाण
केणेँ किदारँ राज़ने दाणवि ज़ि रँ केणेँ दिदि साप
वाद वंद्यँ तो वक उपज़ँ टुटेँ अँया तणँ अेत
अँया तणों तो आर आलँ, गरणँ राको काननि ज़ाळ
मतुरँ मेँ ज़ाइ ने अमें सुोडविलँ लेजु तमेँ दाण
अेवि विद्या अमेँ भण्या नति ज़ि रँ सुकवि देजु दाण
तमेँ तो वाज़ो वननँ रुोंज़ड़ँ अमें नगरि वसँतँ नार
वाद वंद्यँ तो वक उपज़ँ टुटेँ अँया तणँ अेत

(४)

समुोदर ना टापु में मरगलि वियँणि ने अेंडँ मेल्यँसँ स्यार
पँलि दसाए उबो कुतरो ओज़ि विज़ि दसाए वांदि ज़ाळ
तिज़ि दसाए उबो पारधि ओज़ि सोति दसाए मेलि लाय
स्यारँ दशा तो गट वाँदि रँ दिदा क्यँ थै ज़ाए मरगलि
मरगलि तो सामळिया ने समरण करति दयाळ मारा आवो वारे
एन्द्रपुरि में सरि मारा पोड़्या ने रादिका साँपँसे पाँव ज़ो
पाँवँ साँपँते वालो मारा ज़ाग्या ने केमे ज़ाग्या सो कुोरतार
मारा भगत ने भिड़ ज़ो पड़ि ज़ावु सँ तेनि वारे ज़ो
उटो ने नारद गुरुड़ँ पलेंणो ने वालो मारा थैँ असवार ज़ो
नारद अरज़ण साते रँ लिदा बळवँत लिदा सड़िदार ज़ो
यँ थका साल्या सामि सामळियो ने ग्या सेँ पवनने दुोवारँ
सातँ पवन तो आत ज़ुोड़ि उबा केमँ पदार्या कुोरतार
मारा भगत ने भिड़ ज़ो पड़ि ने ज़ावु सँ तेनि वारे ज़ो

यॅ थकि साल्या सामि सामळियो ने ग्या सॅ एन्द्र ने दुवारॅ
वारॅ एन्द्र तो आत जोड़ि उवा केम पदार्या कोरतार
मारा भगत ने भिड़ जो पड़ि ने जावु सॅ तेनि वारे जो
यॅ थकि साल्या सामि सामळियो ने ग्या सॅ नाग ने दुवारॅ
नागॅ–नागणि तो पोडयॅ ते जाग्यॅ ने केम पदार्या कोरतार
मारा भगत ने भिड़ जो पड़ि ने जावु से मरगलिनि वारेजो
नागॅ–नागणि तो तैयार थयॅ ने सेरापत लिदो सॅ असवार
यॅ थकि साल्या सामि सामळियो ने ग्या सॅ मरगलि ने दुवार
मरगलि तो सामळिया ने समरण करति दयाळ मारॅ आव्या सॅ दुवार
सातॅ पवन तो सतिया वाज्या ने उडाड़ि दिदि सॅ जाळ
वारॅ एन्द्र तो धकुकि ने वरस्या ने ओलवि आलि सॅ लाय
यॅ थको पारसि ने नाग जॅ डसियो ने पड़तॅ सुटॅ सॅ वाँण
वाँणॅ सुटंतॅ में कुतराने मार्यो ने प्राणे गया सॅ तरण
स्यारॅ दसा तो गट सुटा थया ने मन पड़ॅ यॅ सगो मरगलि

(५)

स्यार स्यार मैनॅ नु सोमासु रॅ आव्यु प्रवुजि ना दुलिया तो परसाळे ढळावो
वारॅ एन्द्र तो सरि ने मातॅ रॅ वरसे तोय पाणि रॅ दुळावें
जाइ ने रॅ रादाजि ने अेम कँजु मारि सँजे पदारो रॅ
तमारि सँजे तो प्रवुजि जळ गणॅ नेंदरॅ ने आवें रॅ
नेंदराळु ओततो गोरि पियोरियॅ रॅ रेतॅ
पियोरियॅ तो रेतॅ प्रवुजि तमें परण्या ने ओत तो
सोणों ने सासॅलि मारि आ टुक क्यॅ जाइ कंयॅ रॅ
कयॅ जाइ कंयॅ ने क्यॅ जाइ रॅ यॅ
वेगळॅ ओवें रॅ मारॅ माँए ने वाप रॅ
स्यार स्यार मैनॅ नो सियाळो रॅ आव्यो प्रवुजि ना दुलिया तो सानॅणियॅ ढलावो
तलक पसेड़ि सरि ने ओडवा तोय पँका दुळावें रॅ
जॅ ने रादाजि ने अेम कँजु प्रवुजि नि सँजे पदारो रॅ
तमारि सँजे तो प्रवुजि ठण्ड गणि नेंदरे नॅ आवें रॅ

नेँदराळु ओवो तो गोरि पियोरियँ रँ रतँ
पियोरियँ तो रतँ प्रबुजि तमेँ परण्या ने ओत तो
सुणोँ ने सासेलि मारि आ दुक केने कयँ रँ
केने कयँ ने क्यँ जँ रैयँ रँ
वेगळँ ओवेँ रँ माँ ने बाप इ दुक केने कयँ रे
स्यार स्यार मैनँ नो ओनाळो रँ आव्यो प्रबुजि ना ढोलिया तो ओरा में ढोळावो
सात सिरोकँ सरि ने ओडवा तोय सगड़ि धकावेँ रँ
जँ ने रादिका ने कँजु कँ मारि सेजँ पदारो रँ
तमारि सँजे तो प्रबुजि अगन गणि कँ नेँदरँ नँ आवँ रँ
नेँदराळु ओवो तो गोरलि पियोर रतँ रँ
पियोर रतँ प्रबुजि तमेँ जबरँसि परण्या ने आँत तो
सुणोँ ने सासेलि मारि आ दुक केने कयँ रँ
कयँ जँ कयँ ने क्यँ जँ रैयँ रँ
वेगळँ माए ने बाप इ दुक केने कयँ रँ

"गलालेंग"

(१)

लालसेंगना सवा[1] गलालेंग तारु घरति मोगू नामँ जियँ
पुरबिया पुरबगडना राजा तमेँ आँसलगडना राजा ए जियँ
पैला फेराना परण्या मेवाड़ा ने देवदँ सुोड़्या मोड़ँ जियँ
भाइयँ भाइयँ नो वकरो लागो ने सुोड़्या पुरव देसँ जियँ
माँ जणेँता ओकम करो मोँ भाइयँ नो गालुँ घाणँ जियँ

---

१. ज्येष्ठ, बड़ा, elder

सुरज सामि खें नाकें बेटा तने मलें सेरने धाने जियँ
गाडे उसाळा[२] ओंटे तँबुड़ा कँय राणियँ नि सकवालें[३] जियँ
पुरब थका खड़्या[४] गलालेंग कँय वाँका सितोड़ मातें जियँ
सितोड़ थका खड़्या गलालेंग कँय अदियपर नि पोळे जियँ
उदेंपर ना गलाप वाग में पुरविया तारो डेरो जियँ
दन उगतें पें[५] मलकतें वक्ता ने अेलो[६] राल्यो[७] जियँ
घोडें उपर सामन मंडावो राणा ने मजरें जावें जियँ
सड़ि असवारि भिड़ि बकतरे कँय रणवास में आव्या ए जियँ
करण मॅल ने गोकड़ें तो राणा जसेंग नें बॅटें मोलें[८] जियँ
सड़्ये घोड़े भिड़ि बकतरे राणा ने मजरो कर्यो ए जियँ
कणा[९] गामनो करड़ो खतरि मने सड़्यें करें सलामें जियँ
पुरव-गड नो पुरवियो मुों सेर धानने काजेंण[१०] आव्यो ए जियँ
भार-तुोल राज जेलो[११] गलालनो नें तो दो वाँतुकि[१२] सिकें[१३] जियँ
भले पदार्या मेवाड़ ना भोंया[१४] मुों मोधि जुवेंतो वाटें जियँ
नवा मॅलनि दोत खड़िया मँगावो गलाल नो पटो[१५] लकें जियँ
कसन कोटारि मंगळसन मेता गलाल नो पटो लको जियँ

---

१. मूल, मिट्टी, राख
२. उछाला, migration
३. पालखी, Palanquin
४. चलते हुए
५. पो, सूर्योदय
६. आवाज, पुकार
७. दिया
८. महल, बैठक
९. किस, which
१० के लिये, वास्ते, for the sake of
११. जेलना, स्वीकार या ग्रहन करना, to accept
१२. तुरन्त, immediately
१३. छुट्टी
१४. परिचित
१५. पट्टा, जागिर का परवाना

राणी बणि तो गानैं गणें ने कुटारि अक्कर[1] पाड़ैं जियँ
पैंल मोरसैं[2] पैंल मड़ाकैं बम्तोरैं लक्यँ गानैं जियँ
स्यार गान सम्पन मैं आल्यँ ने देस मेवल मैं आल्यँ जियँ
पछि अल्यार नो पटो कैए है (राजू) उदैपर लकैणो जियँ
बौ–पियो ने मोह करो राजू ढँराड़ैं नेड़ि[3] मांडो जियँ
काकाजि ना कुँवोर बत्ता तनैं ढोड़ा पलैंणि लावो जियँ
कुँवोर गलान ने पटा अलैणा अबै गानैं जोवा जावैं जियँ
उदैपर ना ढोड़ा रमाड़ता कैंय अल्तु–बाँटि आव्या जियँ
अल्तु–बाँटि ना तेजि[4] लौंवाव्या[5] माइ केवड़ैं वाळि ताळै जियँ
अेयँ थका तो ढोड़ा लौंवाव्या कैंय जाडोल गानैं आव्या जियँ
जाडोल थका ढोड़ा रमाड़ता माइ विरपोर वाळैं सोरैं[6] जियँ
विरपोर ना तेजि लौंवाव्या ते गड़ ढँराड़ ने मोरैं जियँ
फेरवि फेरवि ने ढोड़ा रमाड़ैं मेड़ियँनि जगा[7] जोवैं जियँ
मात पेंडिना कुन्ता[8] गोरजि[9] मेड़ियँ नैं मुरत आलो जियँ
पैंल सोपाड़[10] जोवैंनैं मैं गा'र मस्तकियँ[11] डोलावैं जियँ
कैंय नजरे आव्यु गोरजि ते मस्तकियँ डोलावो जियँ
वारैं मैंना नेड़ि वेपारो तनैं गाडैं उसाळा गालो जियँ
छतरियँ ना दावड़ा तो उलिनैं[12] लाव्या मौत[13] जियँ

---

१. अक्षर
२. मोर्चा
३. मंजिल, महल
४. घोड़ा, horses
५. दौड़ाये, भगाये
६. चौराहा, Square
७. जगह, स्थान, place
८. कुल के, कुटुम्ब के
९. पुरोहित, ब्राह्मण
१० पुस्तक, पोथि
११. मस्तक, सिर, head
१२. उधार लिया हुआ, Loan
१३. मृत्यु।

"आरती"

वदावो माँ आरति सामळियो घेरँ आव्या
माताओ केसर राज़ना साम घेरँ आव्या
अरके लो वदामणँ निकलंकि घेरँ आव्या ।।
मन्सि ने मन मन्सो थयो ।। वेद लै ने सकवो सायो ।।
ज़ळ में परण्या नारि जँजँकारँ वरताव्यो
वदावो ·········।। १ ।। मत्स्य

कुर्म रुपे करणि किदि ।। प्रतमि तो पिटे लिदि ।।
समुदरनि ता गुोळि किदि ।।
नोव नाग नँ नेतर करि ने सौदँ रतन लाव्या
वदावो·············।। २ ।। कुर्म

वरा रुपे दैत सँओर्या ।। भगत ज़न ना फेरा टाळ्या ।।
मैमल हारि सरण कमल पर मोटर रुप धरि आव्या ।।
वदावो········ ·· ।। ३ ।। वराह

नरसेँग रुपे नाँक वदार्या ।। अरणाकन्स ने आते मार्यो
पँलाद नि परतिगना पाळि ।। अग्नि में उगार्या ।।
वदावो···········।। ४ ।। नरसिंह

कुबि ने कुबेड़ो थयो ।। वदि ने भ्रमंड थयो ।।
वाम नातनँ रुप धरि ने ।। बलि राज़ा सळाव्या ।।
वदावो············।। ५ ।। वामन

फरसा रुपे फरसि साइ ।। सस्तर अर्ज़ण मारि लिदो
कामधेन नि वार सड़ि ने जमदग्नि सुोड़ाव्या ।।
वदावो···········।। ६ ।। परशुराम

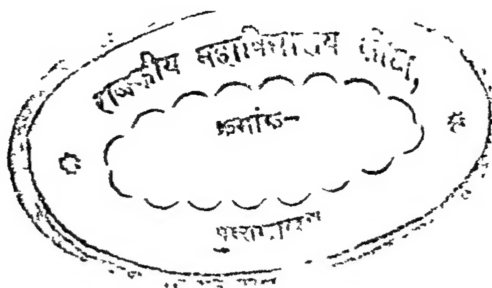
समुदर गड नो सासो सुोड़ि ।। दस मस्तक रावण नँ सेँदि
मेघनात ने अरके वेँदि ।। सिता वारि लाव्या ।।
वदावो···········।। ७ ।। राम

आटमँ तो अरज किदि ।। सुोना गिडि कर मे लिदि ।।
सेसनाग नि फुोंड मरोडि ।। कमलूँ भारो लाव्या ।।
वदावो.............।। ८ ।। कृष्ण

नम्मँ तो नवरंगो थयो ।। कळा तो सँकेलि लाव्या ।।
मुरक सामि बात करि ने मुनिजन कँवँणा ।।
वदावो.............।। ९ ।। बुद्ध

दसमँ तो निकलंकि कँवँणा ।। स्यार जुग नँ बन्दणँ सोड्यूँ ।।
सौद मस्तक कालेंगों सेंद्यो ।। कळजुग काटि सतजुग वरत्यो ।।
जुग में भगत तार्‌या ।।
वदावो.............।। १० ।। निष्कलंक





परिशिष्ट : २

लघु कथाएँ

---

(१) "पादनि पारक"

एक वाँणियो अतो ने एक वाँणियेण अति । रातरे सुतँ तँ । अरदिक रातर थै, अेटला में घोर में सुोर पँटा । सुोर पाद्या । वाँणियो तो सुइग्योतो, पण वाँणियेण जागतिति । वाँणियेणतो सुोरँ भागि विनि । पण सानि रँ तो सुोर लुटि ने लै जँए अेटले बुोलि "ओँ पादुँ तो लुसु-पाद पमलँ, इ (सुोरँ ने भाइजि) पादता तो पुड़ि-पाद पमलतु, सुोरँ पादतँ तो थानकु-पाद पमलतु, पण आ टेँबरुआ-पाद कुोँण पाद्यु ? भाजि-पाद कुोंण पाद्यु" । वाँणियँण नु आवु बुोलवु सँवलि ने सोरँ ने दाँत आववा लागा ने दाँत आवेँ तो पकड़ाइ जवाय अेम करि ने सुोरि कर्या वना सुोर साल्या ग्या ने कँवा लाग्या कँ "आ वाँणियेण तो सारि्र पाद पारकँ ।"

(२) "जोतियो-मोतियो"

एक जुोतियो अतो, एक मुोतियो अतो ने एक ओँ-मुोँ अतो । जुोतियो गाम में ग्यो, मुोतियो गाम में ग्यो ने ओँ-मुोँ ए गाम मे ग्यो । जुोतियो आटो लाव्यो, मुोतियो आटो लाव्यो ने ओँ-मोँ ए आटो लाव्यो । जुोतिये वाटि करि, मुोतिये वाटि करि ने मेँए वाटि करि । जुोतिया नि वाटि सिजि गइ, मुोतियानि वाटि सिजि गइ ने मारि वाटि बलि गइ । अरदि वाटि जुोतिये आलि, अरदि वाटि मुोतिये आलि ने मारु पेट भराइ ग्यु । जुोतियो जिलवा ग्यो, मुोतियो जिलवा ग्यो ने ओँ-मुोँ ए जिलवा ग्यो । जुोतियो तर्यो, मुोतियो तर्यो ने ओँ-मुोँ वुडि ग्यो । एक आत जुोतिये सायो, एक आत मुोतिये सायो ने मने वारतो काड्यो ।

जुोतियो घुोडु पावा ग्यो, मुोतियो घुोडु पावा ग्यो ने ओँ-मुोँए घोडु पावा ग्यो । जुोतियानु घुोडु ओँसोँ करँ, मुोतियानु घुोडु ओँसुोँ करँ ने मारु घुोडु तबुक तबुक करँ ।